Hindi / English / Gujarati

पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह

महाकाव्य

निवेदन

'अथर्वशीर्ष' अर्थात् अथर्ववेदका शिरोभाग। वेदके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् चार भाग हैं; जिन्हें श्रुति कहा जाता है। अधिकांश उपनिषद् प्रायः आरण्यक भागके अंश हैं। 'अथर्वशीर्ष' उपनिषद् ही हैं और अथर्ववेदके अन्तमें आते हैं। ये सर्वविद्याओंकी सर्वभूता 'ब्रह्मविद्या' के प्रतिपादक होनेके कारण यथार्थमें ही 'अथर्वशीर्ष' कहलाते हैं। पंचदेवों—गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु एवं सूर्यके क्रमशः पाँच अथर्वशीर्ष हैं—गणपत्यथर्वशीर्षम्, शिवाथर्वशीर्षम्, देव्यथर्वशीर्षम्, नारायणाथर्वशीर्षम् एवं सूर्याथर्वशीर्षम्।

अपने शास्त्रोंमें इन पंचदेवोंकी मान्यता पूर्णब्रह्मके रूपमें है, इसीलिये इन पंचदेवोंमेंसे किसी एकको अपना इष्ट बनाकर उपासना करनेकी पद्धति है। गणपतिके उपासक गाणपत्य, शिवके उपासक शैव, शक्तिके उपासक शाक्त, विष्णुके उपासक वैष्णव तथा सूर्यके उपासक सौर कहे जाते हैं।

समस्त देवी-देवताओंके उपर्युक्त पंचदेवोंमें अन्तर्भूत होनेसे किसी भी स्वरूपका उपासक अपने इष्टदेवकी सर्वोत्कृष्टताका गूढ़ रहस्य सम्बन्धित अथर्वशीर्षके माध्यमसे जानकर उनकी कृपाका भाजन बन जाता है। प्रत्येक अथर्वशीर्षमें अपने देवको ही सर्वोत्कृष्ट, सर्वनियन्ता और परब्रह्म बताया गया है। इससे कुछ पाठक प्रथमदृष्ट्या भ्रमित भी हो सकते हैं, परंतु यह गूढ़ बात है। वस्तुतः परब्रह्म परमेश्वर ही पंचदेवोंके रूपोंमें व्यक्त हैं तथा सम्पूर्ण चराचरमें भी वे ही व्याप्त हैं— 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः....॥' (श्वेताश्वतर० ६।११) साधक अपनी-अपनी प्रकृति और रुचिके अनुसार ही इन पंचदेवोंमें किसी एक देवको अपना इष्ट मानकर उनकी आराधना करके अधिक सहजतासे भगवत्प्राप्ति कर पाता है, उसके लिये वही स्वरूप सर्वश्रेष्ठ

है। इसमें अन्यके हीन होनेकी बात नहीं है।

प्रत्येक अथर्वशीर्षका पाठ करनेका विलक्षण प्रभाव बताया गया है, जो सभी पापोंका नाशकर पवित्र करनेके साथ-साथ लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धिमें सहायक होता है। इसका सम्यक् विवरण प्रत्येक अथर्वशीर्षके अन्तमें फलश्रुतिके रूपमें देखा जा सकता है।

अथर्वशीर्षसाहित्यकी प्राचीनता तथा प्रामाणिकता असंदिग्ध है। अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, शंख आदि अनेक स्मृतियोंके प्रायश्चित्त-विधानोंमें अथर्वशीर्षका भी स्पष्ट निर्देश मिलता है। यथा—

'शतरुद्रियमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम्।'

(शंखस्मृति ११।४)

'मधून्यघमर्षणमथर्वशिरो रुद्राः......पावनानि।'

(गौतमस्मृति १९।६)

आदिगुरु शंकराचार्यके पूर्वकालीन श्रीहंसयोगीने अपने गीताभाष्यमें देव्यथर्वशीर्षका नामोल्लेख करते हुए उसके प्रमाण उद्धृत किये हैं।

अथर्वशीर्षकी महत्ता तथा सर्वस्वीकारिताका अनुमान इसी बातसे हो जाता है कि वर्तमानमें प्रचलित प्रायः सभी वेद-शाखाओंके कर्मकाण्ड तथा संस्कारसम्बन्धी ग्रन्थोंमें पाँचों अथर्वशीर्षोंका मूल पाठ मिलता है, परंतु पाँचों अथर्वशीर्षोंका सानुवाद संग्रह दृष्टिगोचर नहीं होता। गणपत्यथर्वशीर्ष तथा देव्यथर्वशीर्ष जो गीताप्रेसद्वारा पूर्वमें प्रकाशित हैं, प्रायः वे ही अन्यत्र भी मिल पाते हैं; शेष नहीं। अतः विषयकी महत्ता एवं दुर्लभताको ध्यानमें रखते हुए गीताप्रेससे पाँचों अथर्वशीर्षोंका सानुवाद प्रकाशन किया जा रहा है। इसके साथ ही परिशिष्ट भागमें पंचदेवोंके वैदिक स्तवन (सूक्तादि) भी सानुवाद दिये जा रहे हैं, इससे साधकोंको उपासनामें सुविधा हो सकेगी। आशा है कि सभी गुणग्राही पाठक इस संग्रहसे लाभान्वित होंगे।

॥ श्रीहरिः ॥

विषयानुक्रमणिका

क्र०	सूक्त	पृष्ठांक
	पंचदेव-अथर्वशीर्ष	
१.	गणपत्यथर्वशीर्षम्	७
२.	शिवाथर्वशीर्षम्	१३
३.	देव्यथर्वशीर्षम्	२८
४.	नारायणाथर्वशीर्षम्	३७
५.	सूर्याथर्वशीर्षम्	४१
	परिशिष्ट	
१.	वैदिक गणेश-स्तवन	४७
२.	रुद्र-स्तवन	४८
३.	श्रीसूक्त	५२
४.	पुरुषसूक्त	५६
५.	सूर्यसूक्त	६०
६.	वैदिक आरती	६४

शान्तिपाठ

[गणपति, शिव, देवी एवं सूर्य-अथर्वशीर्षका शान्तिपाठ]

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

हे देवगण! हम भगवान्‌का यजन (आराधन) करते हुए कानोंसे कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रोंसे कल्याण (ही) देखें, सुदृढ़ अंगों एवं शरीरसे भगवान्‌की स्तुति करते हुए हमलोग जो आयु आराध्यदेव परमात्माके काम आ सके, उसका उपभोग करें। सब ओर फैले हुए सुयशवाले इन्द्र हमारे लिये कल्याणका पोषण करें, सम्पूर्ण विश्वका ज्ञान रखनेवाले पूषा हमारे लिये कल्याणका पोषण करें, अरिष्टोंको मिटानेके लिये चक्रसदृश शक्तिशाली गरुडदेव हमारे लिये कल्याणका पोषण करें तथा (बुद्धिके स्वामी) बृहस्पति भी हमारे लिये कल्याणकी पुष्टि करें। परमात्मन्! हमारे त्रिविध तापकी शान्ति हो।

[नारायणाथर्वशीर्षका शान्तिपाठ]

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ॐ वह प्रसिद्ध परमेश्वर हम शिष्य और आचार्य दोनोंकी साथ-साथ रक्षा करे। हम दोनोंको साथ-साथ विद्याके फलका भोग कराये। हम दोनों एक साथ मिलकर वीर्य यानी विद्याकी प्राप्तिके लिये सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनोंका पढ़ा हुआ तेजस्वी हो, हम दोनों परस्पर द्वेष न करें। परमात्मन्! हमारे त्रिविध तापकी शान्ति हो।

पंचदेव-अथर्वशीर्ष

१-गणपत्यथर्वशीर्षम्

*[अथर्वशीर्षकी परम्परामें 'गणपत्यथर्वशीर्ष' का विशेष महत्त्व है। प्राय: प्रत्येक मांगलिक कार्यमें गणपति-पूजनके अनन्तर प्रार्थनारूपमें इसके पाठकी परम्परा है। यह भगवान् गणपतिका वैदिक स्तवन है। गणपति-महामन्त्र '**ॐ गं गणपतये नम:**' एवं गणेश-गायत्री मन्त्रका भी इसके अन्तर्गत माहात्म्यसहित समावेश है। इसका पाठ करनेवाला किसी भी प्रकारके विघ्नसे बाधित न होता हुआ महापातकोंसे मुक्त हो जाता है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करता है। इस गणपत्यथर्वशीर्षको यहाँ सूक्तरूपमें सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]*

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥*

ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्॥ १॥

ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि ॥ २॥

अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम्। अव दातारम्। अव धातारम्। अव अनूचानम्। अव शिष्यम्।

गणपतिको नमस्कार है, तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो, तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्ता हो, तुम्हीं केवल समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो॥ १॥

यथार्थ कहता हूँ। सत्य कहता हूँ॥ २॥

तुम मेरी रक्षा करो। वक्ताकी रक्षा करो। श्रोताकी रक्षा करो। दाताकी रक्षा करो। धाताकी रक्षा करो। षडंग वेदविद् आचार्यकी रक्षा करो। शिष्यकी

---

* शान्तिपाठ पृ०-सं० ६ पर देखना चाहिये।

अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधस्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात्॥ ३॥

त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि॥ ४॥

सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि॥ ५॥

त्वं गुणत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं

रक्षा करो। पीछेसे रक्षा करो। आगेसे रक्षा करो। उत्तर (वाम) भागकी रक्षा करो। दक्षिण भागकी रक्षा करो। ऊपरसे रक्षा करो। नीचेकी ओरसे रक्षा करो। सर्वतोभावसे मेरी रक्षा करो, सब दिशाओंसे मेरी रक्षा करो॥ ३॥

तुम वाङ्मय हो, तुम चिन्मय हो। तुम आनन्दमय हो, तुम ब्रह्ममय हो। तुम सच्चिदानन्द अद्वितीय परमात्मा हो। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम ज्ञानमय हो, विज्ञानमय हो॥ ४॥

यह सारा जगत् तुमसे उत्पन्न होता है। यह सारा जगत् तुमसे सुरक्षित रहता है। यह सारा जगत् तुममें लीन होता है। यह अखिल विश्व तुममें ही प्रतीत होता है। तुम्हीं भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चतुर्विध वाक् हो॥ ५॥

तुम सत्त्व-रज-तम—इन तीनों गुणोंसे परे हो। तुम भूत-भविष्यत्-वर्तमान—इन तीनों कालोंसे परे हो। तुम स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन

शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥ ६॥

गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः। अर्धेन्दुलसितम्। तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः सन्धानम्। संहिता सन्धिः। सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः निचृद्गायत्री छन्दः। गणपतिर्देवता। ॐ गं गणपतये नमः॥ ७॥

तीनों देहोंसे परे हो। तुम नित्य मूलाधारचक्रमें स्थित हो। तुम प्रभु-शक्ति, उत्साह-शक्ति और मन्त्र-शक्ति—इन तीनों शक्तियोंसे संयुक्त हो। योगिजन नित्य तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम ब्रह्मा हो, तुम विष्णु हो, तुम रुद्र हो, तुम इन्द्र हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, तुम (सगुण) ब्रह्म हो, तुम (निर्गुण) त्रिपाद भूः भुवः स्वः एवं प्रणव हो॥ ६॥

'गण' शब्दके आदि अक्षर गकारका पहले उच्चारण करके अनन्तर आदिवर्ण अकारका उच्चारण करे। उसके बाद अनुस्वार रहे। इस प्रकार अर्धचन्द्रसे पहले शोभित जो 'गं' है, वह ओंकारके द्वारा रुद्ध हो अर्थात् उसके पहले और पीछे भी ओंकार हो। यही तुम्हारे मन्त्रका स्वरूप (ॐ गं ॐ) है। 'गकार' पूर्वरूप है, 'अकार' मध्यमरूप है, 'अनुस्वार' अन्त्य-रूप है। 'बिन्दु' उत्तररूप है। 'नाद' संधान है। 'संहिता' सन्धि है। ऐसी यह गणेशविद्या है। इस विद्याके गणक ऋषि हैं, निचृद् गायत्री छन्द है और गणपति देवता हैं। मन्त्र है—'**ॐ गं गणपतये नमः।**'॥ ७॥

एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्॥ ८॥

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्।
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥ ९॥

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥ १०॥

एकदन्तको हम जानते हैं, वक्रतुण्डका हम ध्यान करते हैं। दन्ती हमको उस ज्ञान और ध्यानमें प्रेरित करें॥ ८॥

गणपतिदेव एकदन्त और चतुर्बाहु हैं। वे अपने चार हाथोंमें पाश, अंकुश, दन्त और वरमुद्रा धारण करते हैं। उनके ध्वजमें मूषकका चिह्न है। वे रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण तथा रक्तवस्त्रधारी हैं। रक्तचन्दनके द्वारा उनके अंग अनुलिप्त हैं। वे रक्तवर्णके पुष्पोंद्वारा सुपूजित हैं। भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले, ज्योतिर्मय, जगत्‌के कारण, अच्युत तथा प्रकृति और पुरुषसे परे विद्यमान वे पुरुषोत्तम सृष्टिके आदिमें आविर्भूत हुए। इनका जो इस प्रकार नित्य ध्यान करता है, वह योगी योगियोंमें श्रेष्ठ है॥ ९॥

व्रातपतिको नमस्कार, गणपतिको नमस्कार, प्रमथपतिको नमस्कार; लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार है॥ १०॥

एतदथर्वशीर्षं योऽधीते। स ब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते। स सर्वतः सुखमेधते स पञ्चमहापापात्प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इदमथर्वशीर्ष-मशिष्याय न देयम्। यो यदि मोहाद्दास्यति स पापीयान् भवति। सहस्रावर्तनाद् यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत्॥ ११॥

अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति। चतुर्थ्यामनश्नञ्जपति स विद्यावान् भवति। इत्यथर्वण-

---

इस अथर्वशीर्षका जो पाठ करता है, वह ब्रह्मीभूत होता है, वह किसी प्रकारके विघ्नोंसे बाधित नहीं होता, वह सर्वतोभावेन सुखी होता है, वह पंच महापापोंसे मुक्त हो जाता है। सायंकाल इसका पाठ करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकाल पाठ करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है। सायं और प्रातःकाल पाठ करनेवाला निष्पाप हो जाता है। (सदा) सर्वत्र पाठ करनेवाला सभी विघ्नोंसे मुक्त हो जाता है एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करता है। यह अथर्वशीर्ष उसको नहीं देना चाहिये, जो शिष्य न हो। जो मोहवश अशिष्यको उपदेश देगा, वह महापापी होगा। इसकी एक हजार आवृत्ति करनेसे उपासक जो कामना करेगा, इसके द्वारा उसे सिद्ध कर लेगा॥ ११॥

जो इस मन्त्रके द्वारा श्रीगणपतिका अभिषेक करता है, वह वाग्मी हो जाता है। जो चतुर्थी तिथिमें उपवासकर जप करता है, वह विद्यावान् (अध्यात्मविद्याविशिष्ट) हो जाता है। यह अथर्वण-वाक्य

वाक्यम्। ब्रह्माद्यावरणं विद्यात्। न बिभेति कदाचनेति॥ १२॥

योदूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान् भवति। स मेधावान् भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। यः साज्यसमिद्भिर्यजति स सर्वं लभते स सर्वं लभते॥ १३॥

अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासंनिधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। महाविघ्नात् प्रमुच्यते। महापापात् प्रमुच्यते। महादोषात् प्रमुच्यते। स सर्वविद् भवति। स सर्वविद् भवति। य एवं वेद॥ १४॥ इत्युपनिषत्॥

है। जो ब्रह्मादि आवरणको जानता है, वह कभी भयभीत नहीं होता॥ १२॥

जो दूर्वांकुरोंद्वारा यजन करता है, वह कुबेरके समान हो जाता है। जो लाजाके द्वारा यजन करता है, वह यशस्वी होता है, वह मेधावान् होता है। जो सहस्र मोदकोंके द्वारा यजन करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है। जो घृतात्क समिधाके द्वारा हवन करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है॥ १३॥

जो आठ ब्राह्मणोंको इस उपनिषद्का सम्यक् ग्रहण करा देता है, वह सूर्यके समान तेजःसम्पन्न होता है। सूर्यग्रहणके समय महानदीमें अथवा प्रतिमाके निकट इस उपनिषद्का जप करके साधक सिद्धमन्त्र हो जाता है। सम्पूर्ण महाविघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। महापापोंसे मुक्त हो जाता है। महादोषोंसे मुक्त हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है। वह सर्वविद् हो जाता है—जो इस प्रकार जानता है॥ १४॥ इस प्रकार यह ब्रह्मविद्या है।

२–शिवाथर्वशीर्षम्

[अथर्वशीर्षकी परम्परामें शिवाथर्वशीर्षम् अपेक्षाकृत सबसे बड़ा है। शिवोपासनामें इसका विशिष्ट महत्त्व है। इसमें देवताओंद्वारा भगवान् रुद्रको सर्वदेवमय जानकर उनकी स्तुति की गयी है। साथ ही उनके स्वरूपकी गूढ़ तात्त्विक व्याख्या भी की गयी है। इस अथर्वशीर्षके पाठका अद्भुत फल बताया गया है। इसके पाठसे सभी तीर्थोंमें स्नानका, सभी यज्ञोंके करनेका, साठ हजार गायत्रीजपका, एक लाख रुद्रके जपका तथा दस हजार प्रणवजपका फल प्राप्त होता है, इतिहास और पुराणोंके अध्ययनका फल भी उसे मिलता है। वह स्वयं तो सब पापोंसे मुक्त होता ही है, अपने पूर्वकी सात पीढ़ियोंको भी तार देता है। इसके अन्य अनेक विलक्षण फल भी इसकी फलश्रुतिमें बताये गये हैं। इस शिवाथर्वशीर्षको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥*

ॐ देवा ह वै स्वर्गं लोकमायँस्ते रुद्रमपृच्छन्को भवानिति। सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममास वर्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति। सोऽन्तरादन्तरं प्राविशत् दिशश्चान्तरं प्राविशत् सोऽहं नित्यानित्यो व्यक्ताव्यक्तो ब्रह्माब्रह्माहं प्राञ्चः प्रत्यञ्चोऽहं दक्षिणाञ्च उदञ्चोहं अधश्चोर्ध्वं चाहं दिशश्च

एक समय देवगण घूमते-घूमते स्वर्गलोकमें गये और वहाँ जाकर रुद्रसे पूछने लगे—'आप कौन हैं?' रुद्रभगवान्ने कहा—'मैं एक हूँ; मैं भूत, भविष्य और वर्तमानकालमें हूँ, ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे रहित हो। जो अत्यन्त गुप्त है, जो सभी दिशाओंमें रहता है, वह मैं हूँ। मैं नित्यानित्यरूप, व्यक्तरूप, अव्यक्तरूप, ब्रह्मरूप, अब्रह्मरूप, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशारूप, ऊर्ध्व और अधोरूप,

---

* शान्तिपाठ पृ०-सं० ६ पर देखना चाहिये।

प्रतिदिशश्चाहं पुमानपुमान् स्त्रियश्चाहं गायत्र्यहं सावित्र्यहं त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् चाहं छन्दोऽहं गार्हपत्यो दक्षिणाग्नि-राहवनीयोऽहं सत्योऽहं गौरहं गौर्यहमृगहं यजुरहं सामाहमथर्वाङ्गिरसोऽहं ज्येष्ठोऽहं श्रेष्ठोऽहं वरिष्ठोऽहमा-पोऽहं तेजोऽहं गुह्योऽहमरण्योऽहमक्षरमहं क्षरमहं पुष्करमहं पवित्रमहमुग्रं च मध्यं च बहिश्च पुरस्ताज्ज्योतिरित्यहमेव सर्वेभ्यो मामेव स सर्वः स मां यो मां वेद स सर्वान् देवान् वेद सर्वांश्च वेदान् साङ्गानपि ब्रह्म ब्राह्मणैश्च गां गोभिर्ब्राह्मणान्ब्राह्मणेन हविर्हविषा आयुरायुषा सत्येन सत्यं धर्मेण धर्मं तर्पयामि स्वेन तेजसा। ततो ह वै ते देवा रुद्रमपृच्छन् ते देवा रुद्रमपश्यन्। ते देवा रुद्रमध्यायन् ततो देवा ऊर्ध्वबाहवो रुद्रं स्तुवन्ति॥ १॥

दिशा, प्रतिदिशा, पुमान्, अपुमान्, स्त्री, गायत्री, सावित्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् छन्द, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सत्य, गौ, गौरी, ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, अंगिरस, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ, जल, तेज, गुह्य, अरण्य, अक्षर, क्षर, पुष्कर, पवित्र, उग्र, मध्य, बाह्य, अग्रिम—यह सब तथा ज्योतिरूप मैं ही हूँ। मुझको सबमें रमा हुआ जानो। जो मुझको जानता है, वह सब देवोंको जानता है और अंगोंसहित सब वेदोंको भी जानता है। मैं अपने तेजसे ब्रह्मको ब्राह्मणसे, गौको गौसे, ब्राह्मणको ब्राह्मणसे, हविष्यको हविष्यसे, आयुष्यको आयुष्यसे, सत्यको सत्यसे और धर्मको धर्मसे तृप्त करता हूँ।' वे देव रुद्रसे पूछने लगे, रुद्रको देखने लगे और उनका ध्यान करने लगे, फिर उन देवोंने हाथ ऊँचे करके इस प्रकार स्तुति की॥ १॥

ॐ यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः। १।

यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च विष्णुस्तस्मै वै नमो नमः। २।

यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च स्कन्दस्तस्मै वै नमो नमः। ३।

यो वै रुद्रः स भगवान् यश्चेन्द्रस्तस्मै वै नमो नमः। ४।

यो वै रुद्रः स भगवान्यश्चाग्निस्तस्मै वै नमो नमः। ५।

यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च वायुस्तस्मै वै नमो नमः। ६।

यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च सूर्यस्तस्मै वै नमो नमः। ७।

यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च सोमस्तस्मै वै नमो नमः। ८।

यो वै रुद्रः स भगवान् ये चाष्टौ ग्रहास्तस्मै वै नमो नमः। ९।

यो वै रुद्रः स भगवान् ये चाष्टौ प्रतिग्रहास्तस्मै वै नमो नमः। १०।

यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च भूस्तस्मै वै नमो नमः। ११।

यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च भुवस्तस्मै वै नमो नमः। १२।

यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च स्वस्तस्मै वै नमो नमः। १३।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही ब्रह्मा हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही विष्णु हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही स्कन्द हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ३।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही इन्द्र हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ४।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही अग्नि हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ५।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही वायु हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ६।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही सूर्य हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ७।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही सोम हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ८।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही अष्टग्रह हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ९।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही अष्ट प्रतिग्रह हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १०।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही भूः हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ११।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही भुवः हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १२।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही स्वः हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १३।

यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च महस्तस्मै वै नमो नमः। १४।
यो वै रुद्रः स भगवान् या च पृथिवी तस्मै वै नमो नमः। १५।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्चान्तरिक्षं तस्मै वै नमो नमः। १६।
यो वै रुद्रः स भगवान् या च द्यौस्तस्मै वै नमो नमः। १७।
यो वै रुद्रः स भगवान् याश्चापस्तस्मै वै नमो नमः। १८।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च तेजस्तस्मै वै नमो नमः। १९।
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च कालस्तस्मै वै नमो नमः। २०।
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च यमस्तस्मै वै नमो नमः। २१।
यो वै रुद्रः स भगवान् यश्च मृत्युस्तस्मै वै नमो नमः। २२।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्चामृतं तस्मै वै नमो नमः। २३।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्चाकाशं तस्मै वै नमो नमः। २४।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च विश्वं तस्मै वै नमो नमः। २५।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च स्थूलं तस्मै वै नमो नमः। २६।

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही महः हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १४।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही पृथिवी हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १५।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही अन्तरिक्ष हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १६।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही द्यौ हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १७।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही आप (जल) हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १८।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही तेज हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। १९।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही काल हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २०।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही यम हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २१।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही मृत्यु हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २२।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही अमृत हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २३।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही आकाश हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २४।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही विश्व हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २५।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही स्थूल हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २६।

योो वै रुद्रः स भगवान् यच्च सूक्ष्मं तस्मै वै नमो नमः । २७ ।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च शुक्लं तस्मै वै नमो नमः । २८ ।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च कृष्णं तस्मै वै नमो नमः । २९ ।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च कृत्स्नं तस्मै वै नमो नमः । ३० ।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च सत्यं तस्मै वै नमो नमः । ३१ ।
यो वै रुद्रः स भगवान् यच्च सर्वं तस्मै वै नमो नमः । ३२ ।॥ २॥

भूस्ते आदिर्मध्यं भुवस्ते स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि ब्रह्मैकस्त्वं द्विधा त्रिधा वृद्धिस्त्वं शान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं हुतमहुतं दत्तमदत्तं सर्वमसर्वं विश्वमविश्वं कृतमकृतं परमपरं परायणं च त्वम्। अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्। किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मार्त्यस्य। सोमसूर्यपुरस्तात्सूक्ष्मः पुरुषः। सर्वं

जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही सूक्ष्म हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २७।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही शुक्ल हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २८।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही कृष्ण हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। २९।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही कृत्स्न (समग्र) हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ३०।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही सत्य हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ३१।
जो रुद्र हैं, वे ही भगवान् हैं और वे ही सर्व हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। ३२।॥ २॥

पृथ्वी आपका आदिरूप, भुवर्लोक आपका मध्यरूप और स्वर्गलोक आपका सिररूप है। आप विश्वरूप केवल ब्रह्मरूप हो। दो प्रकारसे या तीन प्रकारसे भासते हो। आप वृद्धिरूप, शान्तिरूप, पुष्टिरूप, हुतरूप, अहुतरूप, दत्तरूप, अदत्तरूप, सर्वरूप, असर्वरूप, विश्व, अविश्व, कृत, अकृत, पर, अपर और परायणरूप हो। आपने हमको अमृत पिलाके अमृतरूप किया, हम ज्योतिभावको प्राप्त हुए और हमको ज्ञान प्राप्त हुआ। अब शत्रु हमारा क्या कर सकेंगे? हमको वे पीड़ा नहीं दे सकेंगे, आप मनुष्यके लिये अमृतरूप हो, चन्द्र-सूर्यसे प्रथम और सूक्ष्म पुरुष हो। जो

जगद्धितं वा एतदक्षरं प्राजापत्यं सौम्यं सूक्ष्मं पुरुषं ग्राह्यमग्राह्येण भावं भावेन सौम्यं सौम्येन सूक्ष्मं सूक्ष्मेण वायव्यं वायव्येन ग्रसति तस्मै महाग्रासाय वै नमो नमः। हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः। तस्योत्तरतः शिरो दक्षिणतः पादौ य उत्तरतः स ओङ्कारः य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तः योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एकः य एकः स रुद्रः यो रुद्रः स ईशानः य ईशानः स भगवान् महेश्वरः॥ ३॥

यह अक्षर और अमृतरूप प्रजापतिका सूक्ष्म रूप है, वही जगत्का कल्याण करनेवाला पुरुष है। वही अपने तेजद्वारा ग्राह्य वस्तुको अग्राह्य वस्तुसे, भावको भावसे, सौम्यको सौम्यसे, सूक्ष्मको सूक्ष्मसे, वायुको वायुसे ग्रास करता है। ऐसे महाग्रास करनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है। सबके हृदयमें देवताओंका, प्राणोंका तथा आपका वास है। जो नित्य तीन मात्राएँ हैं, आप उनके परे हो। उत्तरमें उसका मस्तक है, दक्षिणमें पाद है, जो उत्तरमें है; वही ॐकाररूप है, जो ॐकार है; वही प्रणवरूप है, जो प्रणव है; वही सर्वव्यापीरूप है। जो सर्वव्यापी है; वही अनन्तरूप है, जो अनन्तरूप है; वही ताररूप है, जो ताररूप है; वही शुक्लरूप है, जो शुक्लरूप है; वही सूक्ष्मरूप और जो सूक्ष्मरूप है; वही विद्युत्रूप है, जो विद्युत्रूप है; वही परब्रह्मरूप है, जो परब्रह्मरूप है; वही एकरूप है, जो एकरूप है; वही रुद्ररूप है, जो रुद्ररूप है; वही ईशानरूप है, जो ईशानरूप है; वही भगवान् महेश्वर है॥ ३॥

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामयति तस्मादुच्यते ओङ्कारः। अथ कस्मादुच्यते प्रणवः यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः-सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः। अथ कस्मादुच्यते सर्वव्यापी यस्मादुच्चार्यमाण एव सर्वान् लोकान् व्याप्नोति स्नेहो यथा पललपिण्डमिव शान्तरूपमोतप्रोतमनुप्राप्तो व्यति-षक्तश्च तस्मादुच्यते सर्वव्यापी। अथ कस्मादुच्यतेऽनन्तो यस्मादुच्चार्यमाण एव तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तो नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽनन्तः। अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भजन्मव्याधिजरामरणसंसार-

---

ॐकार इस कारण है कि ॐकारका उच्चारण करनेके समय प्राण ऊपर खींचने पड़ते हैं, इसलिये आप ॐकार कहे जाते हैं। प्रणव कहनेका कारण यह है कि इस प्रणवके उच्चारण करते समय ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, अंगिरस और ब्रह्मा ब्राह्मणको नमस्कार करने आते हैं, इसलिये प्रणव नाम है। सर्वव्यापी कहनेका कारण यह है कि इसके उच्चारण करनेके समय जैसे तिलोंमें तेल व्यापक होकर रहता है, वैसे आप सब लोकोंमें व्यापक हो रहे हैं अर्थात् शान्तरूपसे आप सबमें ओत-प्रोत हैं, इसलिये आप सर्वव्यापी कहलाते हैं। अनन्त कहनेका कारण यह है कि उच्चारण करते समय ऊपर, नीचे और अगल-बगल कहीं भी आपका अन्त देखनेमें नहीं आता, इसलिये आप अनन्त कहलाते हो। तारक कहनेका कारण यह है कि उच्चारणके समयपर गर्भ, जन्म, व्याधि, जरा और मरणवाले संसारके महाभयसे तारने और रक्षा करनेवाले हैं,

महाभयात्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम्। अथ कस्मादुच्यते शुक्लं यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लन्दते क्लामयति च तस्मादुच्यते शुक्लम्। अथ कस्मादुच्यते सूक्ष्मं यस्मादुच्चार्यमाण एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीराण्य-धितिष्ठति सर्वाणि चाङ्गान्यभिमृशति तस्मादुच्यते सूक्ष्मम्। अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं यस्मादुच्चार्यमाण एव व्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम्। अथ कस्मादुच्यते परं ब्रह्म यस्मात्परमपरं परायणं च बृहद्-बृहत्या बृंहयति तस्मादुच्यते परं ब्रह्म। अथ कस्मादुच्यते एकः यः सर्वान्प्राणान् सम्भक्ष्य सम्भक्षणेनाजः संसृजति विसृजति तीर्थमेके व्रजन्ति तीर्थमेके दक्षिणाःप्रत्यञ्च उदञ्चः प्राञ्चोऽभिव्रजन्त्येके तेषां सर्वेषामिह सङ्गतिः। साकं स एको भूतश्चरति प्रजानां तस्मादुच्यत एकः।

इसलिये इनको तारक कहते हैं। शुक्ल कहनेका कारण यह है कि (रुद्र शब्दके) उच्चारण करनेमात्रसे व्याकुलता तथा श्रान्ति होती है। सूक्ष्म कहनेका कारण यह है कि उच्चारण करनेमें सूक्ष्मरूपवाले होकर स्थावरादि सब शरीरोंमें प्रतिष्ठित रहते हैं तथा शरीरके सभी अंगोंमें व्याप्त रहते हैं। वैद्युत कहनेका कारण यह है कि उच्चारण करते ही महान् अज्ञानान्धकाररूप शरीरको प्रकाशित करते हैं, इसलिये वैद्युतरूप कहा है। परम ब्रह्म कहनेका कारण यह है कि पर, अपर और परायणका अधिकाधिक विस्तार करते हो, इसलिये आपको परम ब्रह्म कहते हैं। एक कहनेका कारण यह है कि सब प्राणोंका भक्षण करके अजरूप होकर उत्पत्ति और संहार करते हैं। कोई पुण्य तीर्थमें जाते हैं, कोई दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्वदिशामें तीर्थाटन करते हैं, उन सबकी यही संगति है। सब प्राणियोंके साथमें एकरूपसे रहते हो, इसलिये आपको एक

अथ कस्मादुच्यते रुद्रः यस्मादृषिभिर्नान्यैर्भक्तैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते तस्मादुच्यते रुद्रः। अथ कस्मादुच्यते ईशानः यः सर्वान्देवानीशते ईशानीभिर्जननीभिश्च शक्तिभिः। अभित्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष इति तस्मादुच्यते ईशानः। अथ कस्मादुच्यते भगवान्महेश्वरः यस्माद्भक्ताञ्ज्ञानेन भजत्यनुगृह्णाति च वाचं संसृजति विसृजति च सर्वान् भावान् परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति महीयते तस्मादुच्यते भगवान्महेश्वरः। तदेतद्रुद्र-चरितम्॥ ४॥

एषो ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ

कहते हैं। आपको रुद्र क्यों कहते हैं? क्योंकि ऋषियोंको आपका दिव्य रूप प्राप्त हो सकता है, सामान्य भक्तोंको आपका वह रूप सहज प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये आपको रुद्र कहते हैं। ईशान कहनेका कारण यह है कि सब देवताओंका ईशानी और जननी नामकी शक्तियोंसे आप नियमन करते हो। हे शूर! जैसे दूधके लिये गायको रिझाते हैं, वैसे ही आपकी हम स्तुति करते हैं। आप ही इन्द्ररूप होकर इस जगत्के ईश और दिव्य दृष्टिवाले हो, इसलिये आपको ईशान कहते हैं। आपको भगवान् महेश्वर कहते हैं, इसका कारण यह है कि आप भक्तोंको ज्ञानसे युक्त करते हो, उनके ऊपर अनुग्रह करते हो तथा उनके लिये वाणीका प्रादुर्भाव और तिरोभाव करते हो तथा सब भावोंको त्यागकर आप आत्मज्ञानसे तथा योगके ऐश्वर्यसे अपनी महिमामें विराजते हो, इसलिये आपको भगवान् महेश्वर कहते हैं। ऐसा यह रुद्रचरित है॥ ४॥

यही देव सब दिशाओंमें रहता है। प्रथम जन्म उसीका है, मध्यमें

गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः। एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः। प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता। यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको येनेदं सर्वं विचरति सर्वम्। तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति। क्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्या सञ्चितं स्थापयित्वा तु रुद्रे रुद्रमेकत्वमाहुः। शाश्वतं वै पुराणमिषमूर्जेण पशवोऽनुनामयन्तं मृत्युपाशान्। तदेतेनात्मन्नेतेनार्धचतुर्थेन मात्रेण शान्तिं संसृजति पशुपाशविमोक्षणम्। या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं

तथा अन्तमें वही है, वही उत्पन्न होता है और होगा। प्रत्येक व्यक्तिभावमें वही व्याप्त हो रहा है। एक रुद्र ही किसी अन्यकी अपेक्षा न रखते हुए अपनी महाशक्तियोंसे इस लोकको नियममें रखता है। सब उसमें रहते हैं और अन्तमें सबका संकोच उसीमें होता है। विश्वको प्रकट करनेवाला और रक्षण करनेवाला वही है। जो सब योनियोंमें व्याप रहा है और जिससे यह सब व्याप्त और चैतन्य हो रहा है; उस पूज्य, ईशान और वरद देवका चिन्तन करनेसे मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। क्षमा आदि हेतुसमूहके मूलका त्याग करके संचित कर्मोंको बुद्धिसे रुद्रमें अर्पित करनेसे रुद्रके साथ एकताको प्राप्त होता है। जो शाश्वत, पुरातन और अपने बलसे प्राणियोंके मृत्युपाशका नाश करनेवाला है, उसके साथ आत्मज्ञानप्रद अर्ध-चतुर्थ मात्रासे वह कर्मके बन्धनको तोड़ता हुआ परम शान्ति प्रदान करता है। आपकी प्रथम ब्रह्मायुक्त मात्रा रक्तवर्णवाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं, वे ब्रह्माके पदको प्राप्त होते हैं।

स गच्छेद्ब्रह्मपदम्। या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मात्रा ईशानदेवत्या कपिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पदम्। या सार्धचतुर्थी मात्रा सर्वदेवत्याऽव्यक्तीभूता खं विचरति शुद्ध-स्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत्पदमनामयम्। तदेतदुपासीत मुनयो वाग्वदन्ति न तस्य ग्रहणमयं पन्था विहित उत्तरेण येन देवा यान्ति येन पितरो येन ऋषयः परमपरं परायणं चेति। वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यम्। तमात्मस्थं ये नु पश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिर्भवति नेतरेषाम्। यस्मिन्

विष्णुदेवयुक्त आपकी दूसरी मात्रा कृष्णवर्णवाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं, वे वैष्णवपदको प्राप्त होते हैं। आपकी ईशानदेवयुक्त जो तीसरी मात्रा है, वह पीले वर्णवाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं, वे ईशान यानी रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं। अर्धचतुर्थ मात्रा, जो अव्यक्तरूपमें रहकर आकाशमें विचरती है, उसका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान है, जो उसका ध्यान करते हैं, उनको मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। मुनि कहते हैं कि इस चौथी मात्राकी ही उपासना करनी चाहिये। जो इसकी उपासना करता है, उसको कर्मबन्ध नहीं रहता। यही वह मार्ग है जिस उत्तरमार्गसे देव जाते हैं, जिससे पितृ जाते हैं और जिस उत्तरमार्गसे ऋषि जाते हैं; वही पर, अपर और परायण मार्ग है। जो बालके अग्रभागके समान सूक्ष्मरूपसे हृदयमें रहता है; जो विश्वरूप, देवरूप, सुन्दर और श्रेष्ठ है; जो विवेकी पुरुष हृदयमें रहनेवाले इस परमात्माको देखते हैं, उनको ही शान्तिभाव प्राप्त होता है, दूसरेको नहीं। क्रोध, तृष्णा, क्षमा और

क्रोधं यां च तृष्णां क्षमां चाक्षमां हित्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्या सञ्चितं स्थापयित्वा तु रुद्रे रुद्रमेकत्वमाहुः। रुद्रो हि शाश्वतेन वै पुराणेनेषमूर्जेण तपसा नियन्ता। अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳ ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि यस्माद् व्रतमिदं पाशुपतं यद् भस्म नाङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद् ब्रह्म तदेतत्पाशुपतं पशुपाशविमोक्षणाय॥ ५॥

योऽग्नौ रुद्रो योऽप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये। यो रुद्रोऽग्नौ यो रुद्रोऽप्स्वन्तर्यो रुद्र ओषधीर्वीरुध आविवेश। यो रुद्र इमा विश्वा भुवनानि

अक्षमासे विरत होकर हेतुसमूहके मूलरूप अज्ञानका त्याग करके संचित कर्मोंको बुद्धिसे रुद्रमें अर्पण कर देनेसे रुद्रमें एकताको प्राप्त होते हैं। रुद्र ही शाश्वत और पुराणरूप होनेसे अपने तप और बलसे रसादि सब प्राणि-पदार्थोंका नियन्ता है। अग्नि, वायु, जल, स्थल और आकाश—ये सब भस्मरूप हैं। पशुपतिकी भस्मका जिसके अंगमें स्पर्श नहीं होता, उसका मन और इन्द्रियाँ भस्मरूप यानी निरर्थक हैं, इसलिये पशुपतिकी ब्रह्मरूप भस्म पशुके बन्धनका नाश करनेवाली है॥ ५॥

जो रुद्र अग्निमें है, जो रुद्र जलके भीतर है, उसी रुद्रने औषधियों और वनस्पतियोंमें प्रवेश किया है। जिस रुद्रने इस समस्त विश्वको उत्पन्न किया है, उस अग्निरूप रुद्रको नमस्कार है। जो रुद्र अग्निमें, जलके भीतर, औषधियों और वनस्पतियोंमें स्थित रहता है और जिस रुद्रने इस समस्त विश्वको और

चक्लृपे तस्मै रुद्राय वै नमो नमः। यो रुद्रोऽप्सु यो रुद्र ओषधीषु यो रुद्रो वनस्पतिषु। येन रुद्रेण जगदूर्ध्वं धारितं पृथिवी द्विधा त्रिधा धर्ता धारिता नागा येऽन्तरिक्षे तस्मै रुद्राय वै नमो नमः।

मूर्धानमस्य संसेव्याप्यथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वं प्रेरयत्यवमानोऽधिशीर्षतः। तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुज्झितः। तत् प्राणोऽभिरक्षति शिरोऽन्तमथो मनः। न च दिवो देवजनेन गुप्ता न चान्तरिक्षाणि न च भूम इमाः। यस्मिन्निदं सर्वमोतप्रोतं तस्मादन्यन्न परं किञ्चनास्ति। न तस्मात्पूर्वं न परं तदस्ति न भूतं नोत भव्यं यदासीत्। सहस्रपादेकमूर्धा व्याप्तं स

भुवनोंको उत्पन्न किया है, उस रुद्रको बार-बार नमस्कार है। जो रुद्र जलमें, ओषधियोंमें और वनस्पतियोंमें स्थित है, जिस रुद्रने ऊर्ध्व जगत्को धारण कर रखा है, जो रुद्र शिवशक्तिरूपसे और तीन गुणोंसे पृथ्वीको धारण करता है, जिसने अन्तरिक्षमें नागोंको धारण किया है, उस रुद्रको बार-बार नमस्कार है।

इस (भगवान् रुद्र)-के प्रणवरूप मस्तककी उपासना करनेसे अथर्वाऋषिको उच्च स्थिति प्राप्त होती है। यदि इस प्रकार उपासना न की जाय तो निम्न स्थिति प्राप्त होती है। भगवान् रुद्रका मस्तक देवोंका समूहरूप व्यक्त है, उसका प्राण और मन मस्तकका रक्षण करता है। देवसमूह, स्वर्ग, आकाश अथवा पृथिवी किसीका भी रक्षण नहीं कर सकते। इस भगवान् रुद्रमें सब ओत-प्रोत है। इससे परे कोई अन्य नहीं है, उससे पूर्व कुछ नहीं है; वैसे ही उससे परे कुछ नहीं है, हो गया और होनेवाला भी कुछ नहीं है। उसके हजार पैर हैं, एक मस्तक है और वह सब जगत्में व्याप्त हो रहा है। अक्षरसे

एवेदमावरीवर्ति भूतम्। अक्षरात् सञ्जायते कालः कालाद् व्यापक उच्यते। व्यापको हि भगवान्रुद्रो भोगायमानो यदा शेते रुद्रस्तदा संहार्यते प्रजाः। उच्छ्वसिते तमो भवति तमस आपोऽप्स्वङ्गुल्या मथिते मथितं शिशिरे शिशिरं मथ्यमानं फेनं भवति फेनादण्डं भवत्यण्डाद् ब्रह्मा भवति ब्रह्मणो वायुः वायोरोङ्कार ॐकारात् सावित्री सावित्र्या गायत्री गायत्र्या लोका भवन्ति। अर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति यद्ध्रुवम्। एतद्धि परमं तपः आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों नम इति॥ ६ ॥

य इदमथर्वशिरो ब्राह्मणोऽधीते अश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति अनुपनीत उपनीतो भवति सोऽग्निपूतो भवति

काल उत्पन्न होता है, कालरूप होनेसे उसको व्यापक कहते हैं। व्यापक तथा भोगायमान् रुद्र जब शयन करता है, तब प्रजाका संहार होता है। जब वह श्वाससहित होता है, तब तम होता है, तमसे जल (आप) होता है, जलमें अपनी अँगुलीसे मन्थन करनेसे वह जल शिशिर ऋतुके द्रव (ओस)-रूप होता है, उसका मन्थन करनेसे उसमें फेन होता है, फेनसे अण्डा होता है, अण्डेसे ब्रह्मा होता है, ब्रह्मासे वायु होता है, वायुसे ॐकार होता है। ॐकारसे सावित्री होती है, सावित्रीसे गायत्री होती है और गायत्रीसे सब लोक होते हैं। फिर लोग तप तथा सत्यकी उपासना करते हैं, जिससे शाश्वत अमृत बहता है। यही परम तप है। यही तप जल, ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक और प्रणव है॥ ६ ॥

जो कोई ब्राह्मण इस अथर्वशिरका अध्ययन करता है, वह अश्रोत्रिय हो तो श्रोत्रिय हो जाता है, अनुपनीत (उपनयन-संस्कारसे रहित) हो तो उपनीत हो जाता है। वह अग्निपूत (अग्निसे पवित्र), वायुपूत, सूर्यपूत, और

स वायुपूतो भवति स सूर्यपूतो भवति स सोमपूतो भवति स सत्यपूतो भवति स सर्वपूतो भवति स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति स सर्वैर्वेदैरनुध्यातो भवति स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति तेन सर्वैः क्रतुभिरिष्टं भवति गायत्र्याः षष्टिसहस्राणि जप्तानि भवन्ति इतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि भवन्ति। प्रणवानामयुतं जप्तं भवति। स चक्षुषः पङ्‌क्तिं पुनाति। आ सप्तमात् पुरुषयुगान्पुनातीत्याह भगवानथर्वशिरः सकृज्जप्त्वैव शुचिः स पूतः कर्मण्यो भवति। द्वितीयं जप्त्वा गणाधिपत्यमवाप्नोति। तृतीयं जप्त्वैवमेवानुप्रविशत्योंं सत्यमों सत्यमों सत्यम्॥ ७॥ इत्युपनिषत्॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥*

सोमपूत होता है। वह सत्यपूत और सर्वपूत होता है। वह सब देवोंसे जाना हुआ और सब वेदोंसे ध्यान किया हुआ होता है। वह सब तीर्थोंमें स्नान किया हुआ होता है, उसको सब यज्ञोंका फल मिलता है। साठ हजार गायत्रीके जपका तथा इतिहास और पुराणोंके अध्ययनका एवं रुद्रके एक लाख जपका उसको फल होता है, दस सहस्र प्रणवके जपका फल उसको मिलता है। उसके दर्शनसे मनुष्य पवित्र होता है। वह पूर्वमें हुए सात पीढ़ीके पुरुषोंको तारता है। भगवान्‌ने कहा है कि अथर्वशिरका एक बार जप करनेसे पवित्र होता है और कर्मका अधिकारी होता है। दूसरी बार जपनेसे गणोंका अधिपतित्व प्राप्त करता है और तीसरी बार जप करनेसे सत्यस्वरूप ॐकारमें उसका प्रवेश होता है॥ ७॥ इस प्रकार यह ब्रह्मविद्या है।

---

* शान्तिपाठ पृ०-सं० ६ पर देखना चाहिये।

३–देव्यथर्वशीर्षम्

*[अथर्वशीर्ष–परम्परामें देव्यथर्वशीर्षकी अत्यन्त प्रसिद्धि है। इसके पाठसे देवीकी कृपा शीघ्र प्राप्त होती है। इसके पाठसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके पाठका फल प्राप्त होता है— यह इसकी फलश्रुतिमें बताया गया है। सर्वपापनाश, महासंकटसे मुक्ति, मोक्ष, वाक्सिद्धि, देवतासांनिध्य इत्यादि इसके फल बड़े महत्त्वके हैं। प्रतिमामें प्राणप्रतिष्ठाके समय इसका जप करनेसे देवतासांनिध्य प्राप्त होता है। मृत्युतक टालनेकी सामर्थ्य इसमें है। देवीके नवार्णमन्त्र '**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**' का उपदेश तथा माहात्म्य भी इसमें वर्णित है। यह देव्यथर्वशीर्ष यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]*

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥*

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति॥ १॥

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत् । शून्यं चाशून्यं च॥ २॥

अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्॥ ३॥

ॐ सभी देवता देवीके समीप गये और नम्रतासे पूछने लगे—हे महादेवि! तुम कौन हो?॥ १॥

उसने कहा—मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है॥ २॥

मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ। अवश्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पंचीकृत और अपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य-जगत् मैं ही हूँ॥ ३॥

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्॥ ४॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥ ५॥

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि॥ ६॥

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पदमाप्नोति॥ ७॥

वेद और अवेद मैं हूँ। विद्या और अविद्या भी मैं, अजा और अनजा (प्रकृति और उससे भिन्न) भी मैं, नीचे-ऊपर, अगल-बगल भी मैं ही हूँ॥ ४॥

मैं रुद्रों, वसुओं, आदित्यों और विश्वेदेवोंके रूपोंमें विचरण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनोंका, इन्द्र एवं अग्निका और दोनों अश्विनीकुमारोंका भरण-पोषण करती हूँ॥ ५॥

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भगको धारण करती हूँ। त्रैलोक्यको आक्रान्त करनेके लिये विस्तीर्ण पादक्षेप करनेवाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापतिको मैं ही धारण करती हूँ॥ ६॥

देवोंको उत्तम हवि पहुँचानेवाले और सोमरस निकालनेवाले यजमानके लिये हविर्द्रव्योंसे युक्त धन धारण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी, उपासकोंको धन देनेवाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्होंमें (यजन करनेयोग्य देवोंमें) मुख्य हूँ। मैं आत्मस्वरूपपर आकाशादि निर्माण करती हूँ। मेरा स्थान आत्मस्वरूपको धारण करनेवाली बुद्धिवृत्तिमें है। जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्ति लाभ करता है॥ ७॥

ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ८ ॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः॥ ९ ॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥ १० ॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥ ११ ॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ १२ ॥

तब उन देवोंने कहा—देवीको नमस्कार है। महादेवी एवं कल्याण-कर्त्रीको सदा नमस्कार है। गुणसाम्यावस्थारूपिणी मंगलमयी प्रकृति देवीको नमस्कार है। नियमयुक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं॥ ८॥

उन अग्निके समान वर्णवाली, तपसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफलप्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवीकी हम शरणमें हैं। असुरोंका नाश करनेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ ९॥

प्राणरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसे अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनुतुल्य आनन्ददायक और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप आये॥ १०॥

कालका भी नाश करनेवाली, वेदोंद्वारा स्तुत हुई विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति और दक्षकन्या (सती), पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं॥ ११॥

हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्तिरूपिणीका ही ध्यान करते हैं। वे देवी हमें सन्मार्गमें प्रवृत्त करें॥ १२॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥ १३॥
कामो योनिः कमला वज्रपाणि-
गुंहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च
पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्॥ १४॥

एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति॥ १५॥

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः॥ १६॥

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना

हे दक्ष! आपकी जो कन्या अदिति हैं, वे प्रसूता हुईं और उनके मृत्युरहित कल्याणमय देव उत्पन्न हुए॥ १३॥

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि—इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं), ह, स—वर्ण, मातरिश्वा—वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं), स, क, ल—वर्ण और माया (ह्रीं)—यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और वह ब्रह्मरूपिणी है॥ १४॥

ये परमात्माकी शक्ति हैं। ये विश्वमोहिनी हैं। पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली हैं। ये 'श्रीमहाविद्या' हैं। जो ऐसा जानता है, वह शोकको पार कर जाता है॥ १५॥

भगवती! तुम्हें नमस्कार है। माता! सब प्रकारसे हमारी रक्षा करो॥ १६॥

(मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं—) वही ये अष्ट वसु हैं; वही ये एकादश रुद्र हैं; वही ये द्वादश आदित्य हैं; वही ये सोमपान करनेवाले और सोमपान न करनेवाले विश्वेदेव हैं; वही ये यातुधान (एक प्रकारके

असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम्॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥ १७॥
वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥ १८॥
एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः॥ १९॥

राक्षस), असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं; वही ये सत्त्व-रज-तम हैं; वही ये ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं; वही ये प्रजापति-इन्द्र-मनु हैं; वही ये ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं; वही कला-काष्ठादि कालरूपिणी हैं; उन पाप नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली, अन्तरहित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेनेयोग्य, कल्याणदात्री और मंगलरूपिणी देवीको हम सदा प्रणाम करते हैं॥ १७॥

वियत्—आकाश (ह) तथा 'ई' कारसे युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र) सहित, अर्धचन्द्र (ँ) से अलंकृत जो देवीका बीज है, वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार इस एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं) का ऐसे यति ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण और ज्ञानके सागर हैं। (यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकारके समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थसे भरा हुआ है। संक्षेपमें इसका अर्थ इच्छा-ज्ञान-क्रियाधार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द, समरसीभूत, शिवशक्तिस्फुरण है।)॥ १८-१९॥

वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः ।
नारायणेन सम्मिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः॥ २०॥
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥ २१॥

वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), ब्रह्मसू—काम (क्लीं), इसके आगे छठा व्यंजन अर्थात् च, वही वक्त्र अर्थात् आकारसे युक्त (चा), सूर्य (म), 'अवाम श्रोत्र'—दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात् अनुस्वारसे युक्त (मुं), टकारसे तीसरा ड, वही नारायण अर्थात् 'आ' से मिश्र (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्णमन्त्र उपासकोंको आनन्द और ब्रह्मसायुज्य देनेवाला है॥ २०॥

[इस मन्त्रका अर्थ—हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वती! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मी! हे आनन्दरूपिणी महाकाली! ब्रह्मविद्या पानेके लिये हम सब समय तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीस्वरूपिणी चण्डिके! तुम्हें नमस्कार है। अविद्यारूप रज्जुकी दृढ़ ग्रन्थिको खोलकर मुझे मुक्त करो।]

हृत्कमलके मध्यमें रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अंकुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपवाली, वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रोंसे युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनुके समान भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ॥ २१॥

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥ २२॥

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति॥ २३॥

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता* शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥ २४॥

महाभयका नाश करनेवाली, महासंकटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २२॥

जिसका स्वरूप ब्रह्मादिक नहीं जानते—इसलिये जिसे अज्ञेया कहते हैं, जिसका अन्त नहीं मिलता—इसलिये जिसे अनन्ता कहते हैं, जिसका लक्ष्य दीख नहीं पड़ता—इसलिये जिसे अलक्ष्या कहते हैं, जिसका जन्म समझमें नहीं आता—इसलिये जिसे अजा कहते हैं, जो अकेली ही सर्वत्र है—इसलिये जिसे एका कहते हैं, जो अकेली ही समस्त रूपोंमें सजी हुई है—इसलिये जिसे नैका कहते हैं, वह इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहलाती हैं॥ २३॥

सब मन्त्रोंमें 'मातृका'—मूलाक्षररूपसे रहनेवाली, शब्दोंमें ज्ञान (अर्थ)-रूपसे रहनेवाली, ज्ञानोंमें 'चिन्मयातीता', शून्योंमें 'शून्यसाक्षिणी' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गाके नामसे प्रसिद्ध हैं॥ २४॥

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्॥ २५॥

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति—शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति ।शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः॥ २६॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां

उन दुर्विज्ञेय, दुराचारनाशिनी और संसारसागरसे तारनेवाली दुर्गादेवीको संसारसे डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ॥ २५॥

इस अथर्वशीर्षका जो अध्ययन करता है, उसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके जपका फल प्राप्त होता है। इस अथर्वशीर्षको बिना जाने ही जो प्रतिमास्थापन आदि करता है, वह सैकड़ों लाख जप करके भी अर्चासिद्धि नहीं प्राप्त करता। अष्टोत्तरशत (१०८ बार) जप (इत्यादि) इसकी पुरश्चरणविधि है। जो इसका दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महादेवीके प्रसादसे बड़े दुस्तर संकटोंको पार कर जाता है॥ २६॥

इसका सायंकालमें पाठ करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमें पाठ करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है। सायं तथा प्रातः दोनों समय पाठ करनेवाला निष्पाप होता है।

जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

मध्यरात्रिमें तुरीय* सन्ध्याके समय जप करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। नयी प्रतिमापर जप करनेसे देवतासान्निध्य प्राप्त होता है। प्राणप्रतिष्ठाके समय जप करनेसे प्राणोंकी प्रतिष्ठा होती है। भौमाश्विनी (अमृतसिद्धि) योगमें महादेवीकी सन्निधिमें जप करनेसे महामृत्युसे तर जाता है। जो इस प्रकार जानता है, वह महामृत्युसे तर जाता है। इस प्रकार यह ब्रह्मविद्या है।

* श्रीविद्याके उपासकोंके लिये चार सन्ध्याएँ बतायी गयी हैं। इनमें तुरीय सन्ध्या मध्यरात्रिमें होती है।

४–नारायणाथर्वशीर्षम्

*[अथर्वशीर्षकी परम्परामें नारायणाथर्वशीर्षका वैशिष्ट्य है; क्योंकि जहाँ इसे कृष्णयजुर्वेदीयपरम्पराके उपनिषदोंमें परिगणित किया गया है, वहीं इसमें चारों वेदों ऋक्, यजु:, साम तथा अथर्ववेदका उपदेश–सार 'शिर' (मस्तक)–रूपमें वर्णित है। इसमें भगवान् नारायणसे ही सभीकी उत्पत्ति तथा सभी रूपोंमें उन्हींकी अभिव्यक्ति बतायी गयी है। भगवान् नारायणके अष्टाक्षर मन्त्र '**ॐ नमो नारायणाय**' का उपदेश भी इस लघुकाय अथर्वशीर्षमें बताया गया है। इस अथर्वशीर्षका पाठ करनेसे चारों वेदोंके पाठका फल प्राप्त होता है। इसके पाठसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, यह इसकी फलश्रुतिमें बताया गया है। इस अथर्वशीर्षके पाठसे अन्तमें भगवान् नारायणका सायुज्य भी प्राप्त हो जाता है। इस महत्त्वपूर्ण अथर्वशीर्षको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]*

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥*

ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति। नारायणात्प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। नारायणाद् ब्रह्मा जायते। नारायणाद्रुद्रो जायते। नारायणादिन्द्रो जायते। नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते। नारायणाद् द्वादशादित्या रुद्रा वसवः सर्वाणि छन्दांसि

सनातन पुरुष भगवान् नारायणने संकल्प किया—'मैं जीवोंकी सृष्टि करूँ।' (अत: उन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है।) नारायणसे ही समष्टिगत प्राण उत्पन्न होता है, उन्हींसे मन और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं। आकाश, वायु, तेज, जल तथा सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाली पृथ्वी—इन सबकी नारायणसे ही उत्पत्ति होती है। नारायणसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। नारायणसे रुद्र प्रकट होते हैं। नारायणसे इन्द्रका जन्म होता है। नारायणसे प्रजापति उत्पन्न होते हैं। नारायणसे ही बारह आदित्य प्रकट हुए हैं। ग्यारह रुद्र, आठ वसु और सम्पूर्ण छन्द (वेद) नारायणसे ही उत्पन्न होते हैं, नारायणसे ही प्रेरित

---

* शान्तिपाठ पृष्ठ–सं० ६ में देखना चाहिये।

नारायणादेव समुत्पद्यन्ते। नारायणात्प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते। एतदृग्वेदशिरोऽधीते॥ १॥

अथ नित्यो नारायणः। ब्रह्मा नारायणः। शिवश्च नारायणः। शक्रश्च नारायणः। कालश्च नारायणः। दिशश्च नारायणः। विदिशश्च नारायणः। ऊर्ध्वं च नारायणः। अधश्च नारायणः। अन्तर्बहिश्च नारायणः। नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। य एवं वेद स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति। एतद्यजुर्वेदशिरोऽधीते॥ २॥

ओमित्यग्रे व्याहरेत्। नम इति पश्चात्। नारायणायेत्युपरिष्टात्। ओमित्येकाक्षरम्। नम इति द्वे

होकर वे अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं और नारायणमें ही लीन हो जाते हैं। यह ऋग्वेदीय उपनिषद्का कथन है॥ १॥

भगवान् नारायण नित्य हैं। ब्रह्मा नारायण हैं। शिव भी नारायण हैं। इन्द्र भी नारायण हैं। काल भी नारायण हैं। दिशाएँ भी नारायण हैं। विदिशाएँ (दिशाओंके बीचके कोण) भी नारायण हैं। ऊपर भी नारायण हैं। नीचे भी नारायण हैं। भीतर और बाहर भी नारायण हैं। जो कुछ हो चुका है तथा जो कुछ हो रहा है और होनेवाला है, यह सब भगवान् नारायण ही हैं। एकमात्र नारायण ही निष्कलंक, निरंजन, निर्विकल्प, अनिर्वचनीय एवं विशुद्ध देव हैं, उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार जानता है, वह विष्णु ही हो जाता है, वह विष्णु ही हो जाता है। यह यजुर्वेदीय उपनिषद्का प्रतिपादन है॥ २॥

सबसे पहले '**ॐ**' इस अक्षरका उच्चारण करे, इसके बाद '**नमः**' पदका, फिर अन्तमें '**नारायणाय**' इस पदका उच्चारण करे। '**ॐ**' यह एक अक्षर है। '**नमः**' ये दो अक्षर हैं। '**नारायणाय**' ये पाँच अक्षर हैं। यह '**ॐ**

अक्षरे। नारायणायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम्। यो ह वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदमध्येति। अनपब्रुवः सर्वमायुरेति। विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं ततोऽमृतत्वमश्नुते ततोऽमृतत्वमश्नुत इति। एतत्सामवेदशिरोऽधीते॥ ३॥

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम्। अकार उकारो मकार इति। ता अनेकधा समभवत्तदेतदोमिति। यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात्। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति। तदिदं पुण्डरीकं विज्ञानघनं तस्मात्तडिदाभमात्रम्। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः। ब्रह्मण्यः

नमो नारायणाय' पद भगवान् नारायणका अष्टाक्षरमन्त्र है। निश्चय ही जो मनुष्य भगवान् नारायणके इस अष्टाक्षरमन्त्रका जप करता है, वह उत्तम कीर्तिसे युक्त हो पूरी आयुतक जीवित रहता है। जीवोंका आधिपत्य, धनकी वृद्धि, गौ आदि पशुओंका स्वामित्व—ये सब भी उसे प्राप्त होते हैं। तदनन्तर वह अमृतत्वको प्राप्त होता है, अमृतत्वको प्राप्त होता है (अर्थात् भगवान् नारायणके अमृतमय परमधाममें जाकर परमानन्दका अनुभव करता है)। यह सामवेदीय उपनिषद्का कथन है॥ ३॥

आत्मानन्दमय ब्रह्मपुरुष प्रणवस्वरूप है; 'अ' 'उ' 'म'—ये उसकी मात्राएँ हैं। ये अनेक हैं; इनका ही सम्मिलित रूप 'ॐ' इस प्रकार हुआ है। इस प्रणवका जप करके योगी जन्म-मृत्युरूप संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रकी उपासना करनेवाला साधक वैकुण्ठधाममें जायगा। वह वैकुण्ठधाम विज्ञानघन पुण्डरीक (कमल) है; अतः इसका स्वरूप विद्युत्के समान परम प्रकाशमय है। देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मण्य (ब्राह्मणप्रिय) हैं। भगवान् मधुसूदन ब्रह्मण्य हैं। पुण्डरीक (कमल)-

पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युत इति। सर्वभूतस्थमेकं वै नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्मोम्। एतदथर्वशिरोऽधीते॥ ४॥

प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। तत्सायं प्रातरधीयानः पापोऽपापो भवति। मध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः पञ्चमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते। सर्ववेदपारायणपुण्यं लभते। नारायणसायुज्यमवाप्नोति श्रीमन्नारायणसायुज्यमवाप्नोति य एवं वेद॥ ५॥ इत्युपनिषत्॥

॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः॥*

के सदृश नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु ब्रह्मण्य हैं। अच्युत विष्णु ब्रह्मण्य हैं। सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित एक ही नारायणदेव कारणपुरुष हैं। वे ही कारणरहित परब्रह्म हैं। यह अथर्ववेदीय उपनिषद्का प्रतिपादन है॥ ४॥

प्रातःकाल इस उपनिषद्का पाठ करनेवाला पुरुष रात्रिमें किये हुए पापका नाश कर डालता है। सायंकालमें इसका पाठ करनेवाला मनुष्य दिनमें किये हुए पापका नाश कर डालता है। सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय पाठ करनेवाला साधक पहलेका पापी हो तो भी निष्पाप हो जाता है। दोपहरके समय भगवान् सूर्यकी ओर मुख करके पाठ करनेवाला मानव पाँच महापातकों और उपपातकोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण वेदोंके पाठका पुण्यलाभ करता है। वह भगवान् श्रीनारायणका सायुज्य प्राप्त कर लेता है; जो इस प्रकार जानता है, वह श्रीमन्नारायणका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ५॥ इस प्रकार यह ब्रह्मविद्या है।

---

* शान्तिपाठ पृष्ठ-सं० ६ में देखना चाहिये।

५–सूर्याथर्वशीर्षम्

*[अथर्वशीर्ष-परम्परामें सूर्याथर्वशीर्ष परिमाणकी दृष्टिसे लघुकाय है, परंतु इसका महत्त्व व्यापक है। सौर-उपासनामें यह कल्पवृक्षके सदृश ही है। इसके अन्तर्गत सूर्यगायत्रीके अतिरिक्त भगवान् सूर्यके अष्टाक्षर मन्त्र '**ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्**' का भी अमित माहात्म्य वर्णित है। जो इसका जप करता है, उसे नाना लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंकी प्राप्ति सम्भव है। इसके जपसे जहाँ महापातकोंसे भी मुक्ति प्राप्त होती है, वहीं वेदविद्याकी प्राप्तिके साथ सैकड़ों यज्ञोंके करनेका फल भी प्राप्त होता है। इतना ही नहीं मुहूर्तविशेषमें इसके जपसे महामृत्युसे भी तरा जा सकता है। इस सूर्याथर्वशीर्षको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]*

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥*

हरिः ॐ ॥ अथ सूर्याथर्वाङ्गिरसं व्याख्यास्यामः । ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । आदित्यो देवता । हंसः सोऽह-मग्निनारायणयुक्तं बीजम् । हृल्लेखा शक्तिः । वियदादि-सर्गसंयुक्तं कीलकम् । चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम् । सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं

हरिः ॐ। अब सूर्यदेवसम्बन्धी अथर्वांगिरस मन्त्रोंका व्याख्यान करेंगे। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। आदित्य देवता हैं। '**हंसः**' '**सोऽहं**' अग्निनारायणयुक्त बीज है। हृल्लेखा शक्ति है। वियदादि सृष्टिसे संयुक्त कीलक है। चारों प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है।

छः स्वरोंपर आरूढ़ बीजके साथ, छः अंगोंवाले, लाल कमलपर स्थित, सात घोड़ोंवाले रथपर सवार, हिरण्यवर्ण, चतुर्भुज तथा चारों हाथोंमें क्रमशः

---

* शान्तिपाठ पृ०-सं० ६ पर देखना चाहिये।

कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः।

ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञःपर्जन्योऽन्नमात्मा। नमस्त आदित्य त्वमेव केवलं कर्मकर्तासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि। त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि। त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि। त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि। त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि।

दो कमल तथा वर और अभयमुद्रा धारण किये, कालचक्रके प्रणेता श्रीसूर्य-नारायणको जो इस प्रकार जानता है, निश्चयपूर्वक वही ब्रह्मवेत्ता है।

जो प्रणवके अर्थभूत सच्चिदानन्दमय और भूः, भुवः एवं स्वःरूपसे त्रिभुवनमय हैं, सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले उन भगवान् सूर्यदेवके सर्वश्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा प्रदान करें। भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण जंगम और स्थावर जगत्के आत्मा हैं, निश्चयपूर्वक सूर्यदेवसे ही ये भूत उत्पन्न होते हैं। सूर्यदेवसे यज्ञ,बादल, अन्न (बल-वीर्य) एवं आत्मा (चेतना)-का आविर्भाव होता है। हे आदित्य! आपको हमारा नमस्कार है। आप ही केवल कर्मकर्ता हैं, आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, आप ही प्रत्यक्ष विष्णु हैं, आप ही प्रत्यक्ष रुद्र हैं। आप ही प्रत्यक्ष ऋग्वेद हैं। आप ही प्रत्यक्ष यजुर्वेद हैं, आप ही प्रत्यक्ष सामवेद हैं। आप ही प्रत्यक्ष अथर्ववेद हैं। आप ही समस्त छन्दस्वरूप

आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद् भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्याज्ज्योतिर्जायते। आदित्याद् व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति। असावादित्यो ब्रह्म। आदित्योऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकाराः। आदित्यो वै व्यानः समानोदानोपानः प्राणः। आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणाः। आदित्यो वै वाक्पाणिपादपायूपस्थाः। आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दाः। आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः। नमो मित्राय

हैं। आदित्यसे वायु उत्पन्न होती है। आदित्यसे भूमि उत्पन्न होती है। आदित्यसे जल उत्पन्न होता है। आदित्यसे ज्योति (अग्नि) उत्पन्न होती है, आदित्यसे आकाश और दिशाएँ उत्पन्न होती हैं। आदित्यसे देवता उत्पन्न होते हैं। आदित्यसे वेद उत्पन्न होते हैं। निश्चय ही ये आदित्यदेवता ही इस ब्रह्माण्ड-मण्डलको तपाते (गर्मी प्रदान करते) हैं। वे आदित्य ब्रह्म हैं। आदित्य ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकाररूप हैं। आदित्य ही व्यान, समान, उदान, अपान और प्राण—इन पाँचों प्राणोंके रूपमें विराजते हैं। आदित्य ही श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना एवं घ्राण—इन पाँच इन्द्रियोंके रूपमें क्रियाशील हैं। आदित्यदेव ही वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ—ये पाँचों कर्मेन्द्रिय भी हैं। आदित्य ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय हैं। आदित्य ही वचन, आदान, गमन, मलत्याग एवं आनन्द—ये कर्मेन्द्रियोंके पाँच विषय हैं। आनन्दमय, ज्ञानमय एवं विज्ञानमय आदित्यदेव ही हैं। मित्रदेवता एवं सूर्यदेवको नमस्कार है। प्रभो! (आप) मृत्युसे मेरी रक्षा करें। दीप्तिमान्

भानवे मृत्योर्मां पाहि भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः। सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च। चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः। आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।

सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतुसर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म घृणिरिति द्वे अक्षरे। सूर्य

तथा विश्वके कारणरूप सूर्यनारायणको नमस्कार है। सूर्यसे सम्पूर्ण चराचर जीव उत्पन्न होते हैं, सूर्यके द्वारा ही उनका पालन होता है। अन्तमें सूर्यमें ही वे लयको प्राप्त होते हैं। जो सूर्यनारायण हैं, वही मैं भी हूँ। सविता देवता हमारे नेत्र हैं एवं (पर्वके द्वारा पुण्यकालका आख्यान करनेके कारण) जो पर्वत नामसे प्रसिद्ध हैं, वे सूर्य ही हमारे चक्षु हैं। (सबको धारण करनेवाले) धाता नामसे प्रसिद्ध वे आदित्यदेव हमारे नेत्रोंको दृष्टिशक्ति प्रदान करके धारण करें। (श्रीसूर्यगायत्री—) हम भगवान् आदित्यको जानते हैं, हम सहस्र (अनन्त) किरणोंसे मण्डित भगवान् सूर्यनारायणका ध्यान करते हैं। वे सूर्यदेव हमें प्रेरणा प्रदान करें।

हमारे पीछे सविता देवता हैं, आगे सविता देवता हैं, बायें सविता देवता हैं और दक्षिण भागमें भी तथा ऊपर-नीचे भी सविता देवता हैं। सविता देवता हमारे लिये सब कुछ उत्पन्न करें (सभी अभीष्ट वस्तुएँ दें)। सविता देवता हमें दीर्घायु प्रदान करें।

'**ॐ**' यह एकाक्षर मन्त्र ब्रह्म है। '**घृणिः**' यह दो अक्षरोंका

इत्यक्षरद्वयम्। आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि। एतस्यैव सूर्यस्याष्टाक्षरो मनुः।

यः सदाहरहर्जपति स वै ब्राह्मणो भवति। स वै ब्राह्मणो भवति। सूर्याभिमुखो जप्त्वा महाव्याधि-भयात्प्रमुच्यते। अलक्ष्मीर्नश्यति। अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति। अगम्यागमनात्पूतो भवति। पतितसम्भाषणात्पूतो भवति। असत्सम्भाषणात्पूतो भवति। मध्याह्ने सूर्याभि-मुखः पठेत्। सद्योत्पन्नपञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते। सैषां सावित्रीं विद्यां न किञ्चिदपि न कस्मैचित्प्रशंसयेत्। य एतां महाभागः प्रातः पठति स भाग्यवाञ्जायते। पशून्

मन्त्र है। **'सूर्यः'** यह दो अक्षरोंका मन्त्र है। **'आदित्यः'** इस मन्त्रमें तीन अक्षर हैं। इन सबको मिलाकर सूर्यनारायणका अष्टाक्षर महामन्त्र—**'ॐ घृणिः सूर्य आदित्योम्'** बनता है। [यही अथर्वांगिरस सूर्यमन्त्र है।]

इस मन्त्रका जो प्रतिदिन जप करता है, वही ब्रह्मवेत्ता होता है, वही ब्राह्मण होता है। सूर्यनारायणकी ओर मुख करके इसे जपनेसे महाव्याधिके भयसे मुक्त हो जाता है। उसका दारिद्र्य नष्ट हो जाता है। अभक्ष्यभक्षणसे पवित्र होता है, अगम्यगमनसे पवित्र होता है। पतितसम्भाषणके दोषसे पवित्र होता है। असत्यभाषणके दोषसे पवित्र होता है। मध्याह्नमें सूर्यकी ओर मुख करके इसका जप करे। इस प्रकार करनेसे मनुष्य सद्यः उत्पन्न पाँच महापातकोंसे छूट जाता है। यह सावित्री विद्या है, इसकी जिस किसी अपात्रसे कुछ भी प्रशंसा (परिचर्चा) न करे। जो महाभाग इसका प्रात:काल पाठ करता है, वह भाग्यवान् हो जाता है। उसे गौ इत्यादि

विन्दति। वेदार्थॅंल्लभते। त्रिकालमेतज्जप्त्वा क्रतुशत-फलमवाप्नोति। यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति। य एवं वेद॥ इत्युपनिषत्॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥*

पशुओंका लाभ होता है, वह वेदके अभिप्रायको जाननेवाला होता है। इसका त्रिकाल जप करनेसे सैकड़ों यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो सूर्यदेवके हस्त नक्षत्रमें रहते समय (अर्थात् आश्विन मासमें) इसका जप करता है, वह महामृत्युसे तर जाता है। जो इस प्रकारसे जानता है, वह महामृत्युसे तर जाता है। इस प्रकार यह ब्रह्मविद्या है।

परिशिष्ट

[अथर्वशीर्षके अतिरिक्त वेदोंमें इन पाँचों विशिष्ट देवताओंकी उपासनामें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र और सूक्त भी प्राप्त होते हैं। यहाँ उनमेंसे कुछ मन्त्रों और सूक्तोंको भावार्थसहित दिया जा रहा है, जिनका उपयोग आस्तिक द्विजोंको उन देवोंकी उपासनामें श्रद्धापूर्वक करना चाहिये।]

वैदिक गणेश-स्तवन

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥

[शु०यजु० २३।१९]

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

[ऋक्० २।२३।१]

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्। न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

[ऋक्० १०।११२।९]

हे परमदेव गणेशजी! समस्त गणोंके अधिपति एवं प्रिय पदार्थों-प्राणियोंके पालक और समस्त सुखनिधियोंके निधिपति आपका हम आवाहन करते हैं। आप सृष्टिको उत्पन्न करनेवाले हैं, हिरण्यगर्भको धारण करनेवाले अर्थात् संसारको अपने-आपमें धारण करनेवाली प्रकृतिके भी स्वामी हैं, आपको हम प्राप्त हों।

हे अपने गणोंमें गणपति (देव), क्रान्तदर्शियोंमें (कवियोंमें) श्रेष्ठ कवि, शिवा-शिवके प्रिय ज्येष्ठ पुत्र, अतिशय भोग और सुख आदिके दाता, हम आपका आवाहन करते हैं। हमारी स्तुतियोंको सुनते हुए पालनकर्ताके रूपमें आप इस सदनमें आसीन हों।

हे गणपते! आप स्तुति करनेवाले हमलोगोंके मध्यमें भली प्रकार स्थित होइये। आपको क्रान्तदर्शी कवियोंमें अतिशय बुद्धिमान्—सर्वज्ञ कहा जाता है। आपके बिना कोई भी शुभाशुभ कार्य आरम्भ नहीं किया जाता। (इसलिये) हे भगवन् (मघवन्)! ऋद्धि-सिद्धिके अधिष्ठाता देव! हमारी इस पूजनीय प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये।

रुद्र-स्तवन

[भूतभावन भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नताके लिये रुद्रसूक्तके पाठका विशेष महत्त्व बताया गया है। पूजामें भगवान् शंकरको सबसे प्रिय जलधारा है। इसलिये भगवान् शिवके पूजनमें रुद्राभिषेककी परम्परा है। 'रुद्रसूक्त' आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक— त्रिविध तापोंसे मुक्त कराने तथा अमृतत्वकी ओर अग्रसर करनेका अन्यतम उपाय है। यहाँ इस सूक्तके मन्त्रोंको भावार्थसहित प्रस्तुत किया जा रहा है—]

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः॥ १॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि॥ २॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत्॥ ३॥

दुःख दूर करनेवाले (अथवा ज्ञान प्रदान करनेवाले) हे रुद्र! आपके क्रोध (तेज)-के लिये नमस्कार है, आपके बाणोंके लिये नमस्कार है और आपकी दोनों भुजाओंके लिये नमस्कार है॥ १॥

हे गिरिशन्त! (कैलासपर रहकर संसारका कल्याण करनेवाले अथवा वाणीमें स्थित होकर लोगोंको सुख देनेवाले या मेघमें स्थित होकर वृष्टिके द्वारा लोगोंको सुख देनेवाले) हे रुद्र! आपका जो मंगलदायक, सौम्य, केवल पुण्यप्रकाशक शरीर है, उस अनन्त सुखकारक शरीरसे हमारी ओर देखिये अर्थात् हमारी रक्षा कीजिये॥ २॥

कैलासपर रहकर संसारका कल्याण करनेवाले तथा मेघोंमें स्थित होकर वृष्टिके द्वारा जगत्की रक्षा करनेवाले हे सर्वज्ञ रुद्र! शत्रुओंका नाश करनेके लिये जिस बाणको आप अपने हाथमें धारण करते हैं, वह कल्याणकारक हो और आप मेरे पुत्र-पौत्र तथा गो, अश्व आदिका नाश मत कीजिये॥ ३॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत्॥ ४॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च
यातुधान्योऽधराचीः परा सुव॥ ५॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः
सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे॥ ६॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥ ७॥

हे कैलासपर शयन करनेवाले! आपको प्राप्त करनेके लिये हम मंगलमय वचनसे आपकी स्तुति करते हैं। जिस प्रकार हमारा समस्त संसार तापरहित, निरोग और निर्मल मनवाला बने, वैसा आप करें॥ ४॥

अत्यधिक वन्दनशील, समस्त देवताओंमें मुख्य, देवगणोंके हितकारी तथा रोगोंका नाश करनेवाले रुद्र मुझसे सबसे अधिक बोलें, जिससे मैं सर्वश्रेष्ठ हो जाऊँ। हे रुद्र! समस्त सर्प, व्याघ्र आदि हिंसकोंका नाश करते हुए आप अधोगमन करानेवाली राक्षसियोंको हमसे दूर कर दें॥ ५॥

उदयके समय ताम्रवर्ण (अत्यन्त रक्त), अस्तकालमें अरुणवर्ण (रक्त), अन्य समयमें वभ्रु (पिंगल)-वर्ण तथा शुभ मंगलोंवाला जो यह सूर्यरूप है, वह रुद्र ही है। किरणरूपमें ये जो हजारों रुद्र इन आदित्यके सभी ओर स्थित हैं, इनके क्रोधका हम अपनी भक्तिमय उपासनासे निवारण करते हैं॥ ६॥

जिन्हें अज्ञानी गोप तथा जल भरनेवाली दासियाँ भी प्रत्यक्ष देख सकती हैं, विष धारण करनेसे जिनका कण्ठ नीलवर्णका हो गया है, तथापि विशेषतः रक्तवर्ण होकर जो सर्वदा उदय और अस्तको प्राप्त होकर गमन करते हैं, वे रविमण्डलस्थित रुद्र हमें सुखी कर दें॥ ७॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्त्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः॥ ८ ॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥ ९ ॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ उत।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥ १०॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज॥ ११॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम्॥ १२॥

नीलकण्ठ, सहस्रनेत्रवाले, इन्द्रस्वरूप और वृष्टि करनेवाले रुद्रके लिये मेरा नमस्कार है। उस रुद्रके जो अनुचर हैं, उनके लिये भी मैं नमस्कार करता हूँ॥ ८॥

हे भगवन्! आप धनुषकी दोनों कोटियोंके मध्य स्थित प्रत्यंचाका त्याग कर दें और अपने हाथमें स्थित बाणोंको भी दूर फेंक दें अर्थात् हमपर अनुग्रह करें॥ ९॥

जटाजूट धारण करनेवाले रुद्रका धनुष प्रत्यंचारहित रहे, तूणीरमें स्थित बाणोंके नोकदार अग्रभाग नष्ट हो जायँ, इन रुद्रके जो बाण हैं, वे भी नष्ट हो जायँ तथा इनके खड्ग रखनेका कोश भी खड्गरहित हो जाय अर्थात् वे रुद्र हमारे प्रति सर्वथा करुणामय हो जायँ॥ १०॥

अत्यधिक वृष्टि करनेवाले हे रुद्र! आपके हाथमें जो धनुषरूप आयुध है, उस सुदृढ़ तथा अनुपद्रवकारी धनुषसे हमारी सब ओरसे रक्षा कीजिये॥ ११॥

हे रुद्र! आपका धनुषरूप आयुध सब ओरसे हमारा त्याग करे अर्थात् हमें न मारे और आपका जो बाणोंसे भरा तरकश है, उसे हमसे दूर रखिये॥ १२॥

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव॥ १३॥
नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥ १४॥
मा नो महान्तमुत मा नो
अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥ १५॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधी-
र्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥ १६॥

[शु०यजु० १६। १—१६]

सौ तूणीर और सहस्र नेत्र धारण करनेवाले हे रुद्र! धनुषकी प्रत्यंचा दूर करके और बाणोंके अग्र भागोंको तोड़कर आप हमारे प्रति शान्त और प्रसन्न मनवाले हो जायँ॥ १३॥

हे रुद्र! शत्रुओंको मारनेमें प्रगल्भ और धनुषपर न चढ़ाये गये आपके बाणके लिये हमारा प्रणाम है। आपकी दोनों बाहुओं और धनुषके लिये भी हमारा प्रणाम है॥ १४॥

हे रुद्र! हमारे गुरु, पितृव्य आदि वृद्धजनोंको मत मारिये, हमारे बालककी हिंसा मत कीजिये, हमारे तरुणको मत मारिये, हमारे गर्भस्थ शिशुका नाश मत कीजिये, हमारे माता-पिताको मत मारिये तथा हमारे प्रिय पुत्र-पौत्र आदिकी हिंसा मत कीजिये॥ १५॥

हे रुद्र! हमारे पुत्र-पौत्र आदिका विनाश मत कीजिये, हमारी आयुको नष्ट मत कीजिये, हमारी गौओंको मत मारिये, हमारे घोड़ोंका नाश मत कीजिये, हमारे क्रोधयुक्त वीरोंकी हिंसा मत कीजिये। हविसे युक्त होकर हम सब सदा आपका आवाहन करते हैं॥ १६॥

श्रीसूक्त

[इस सूक्तके आनन्द, कर्दम, चिक्लीत, जातवेद ऋषि; 'श्री' देवता और अनुष्टुप्, प्रस्तारपंक्ति एवं त्रिष्टुप् छन्द हैं। देवीके अर्चनमें 'श्रीसूक्त' की अतिशय मान्यता है। विशेषकर भगवती लक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिये 'श्रीसूक्त' के पाठकी विशेष महिमा बतायी गयी है। ऐश्वर्य एवं समृद्धिकी कामनासे इस सूक्तके मन्त्रोंका जप तथा इन मन्त्रोंसे हवन, पूजन अभीष्टदायक होता है। यह सूक्त ऋक्परिशिष्टमें पठित है। यहाँ यह सूक्त सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ २॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ ३॥

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां
ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।

हे जातवेदा (सर्वज्ञ) अग्निदेव! आप सुवर्णके समान रंगवाली, किंचित् हरितवर्णविशिष्टा, सोने और चाँदीके हार पहननेवाली, चन्द्रवत् प्रसन्नकान्ति, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें॥ १॥

हे अग्ने! उन लक्ष्मीदेवीका, जिनका कभी विनाश नहीं होता तथा जिनके आगमनसे मैं सोना, गौ, घोड़े तथा पुत्रादिको प्राप्त करूँगा, मेरे लिये आवाहन करें॥ २॥

जिन देवीके आगे घोड़े तथा उनके पीछे रथ रहते हैं तथा जो हस्तिनादको सुनकर प्रमुदित होती हैं, उन्हीं श्रीदेवीका मैं आवाहन करता हूँ; लक्ष्मीदेवी मुझे प्राप्त हों॥ ३॥

जो साक्षात् ब्रह्मरूपा, मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, सोनेके आवरणसे आवृत, दयार्द्र, तेजोमयी, पूर्णकामा, भक्तानुग्रहकारिणी, कमलके आसनपर

पद्मेस्थितां पद्मवर्णां
तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ४॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये
अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥ ५॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥ ६॥
उपैतु मां देवसखः
कीर्तिश्च मणिना सह।

विराजमान तथा पद्मवर्णा हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ॥ ४॥

मैं चन्द्रके समान शुभ्र कान्तिवाली, सुन्दर द्युतिशालिनी, यशसे दीप्तिमती, स्वर्गलोकमें देवगणोंके द्वारा पूजिता, उदारशीला, पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीकी शरण ग्रहण करता हूँ। मेरा दारिद्र्य दूर हो जाय। मैं आपको शरण्यके रूपमें वरण करता हूँ॥ ५॥

हे सूर्यके समान प्रकाशस्वरूपे! आपके ही तपसे वृक्षोंमें श्रेष्ठ मंगलमय बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके फल आपके अनुग्रहसे हमारे बाहरी और भीतरी दारिद्र्यको दूर करें॥ ६॥

हे देवि! देवसखा कुबेर और उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्ष-प्रजापतिकी कन्या कीर्ति मुझे प्राप्त हों अर्थात् मुझे धन और यशकी प्राप्ति हो। मैं इस

प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्
कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥ ७ ॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ ८ ॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ९ ॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥ १० ॥
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥ ११ ॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥ १२ ॥

राष्ट्रमें—देशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मुझे कीर्ति और ऋद्धि प्रदान करें॥ ७॥

लक्ष्मीकी ज्येष्ठ बहिन अलक्ष्मी (दरिद्रताकी अधिष्ठात्री देवी)-का, जो क्षुधा और पिपासासे मलिन—क्षीणकाय रहती हैं, मैं नाश चाहता हूँ। देवि! मेरे घरसे सब प्रकारके दारिद्र्य और अमंगलको दूर करो॥ ८॥

सुगन्धित जिनका प्रवेशद्वार है, जो दुराधर्षा तथा नित्यपुष्टा हैं और जो गोमयके बीच निवास करती हैं, सब भूतोंकी स्वामिनी उन लक्ष्मीदेवीका मैं अपने घरमें आवाहन करता हूँ॥ ९॥

मनकी कामनाओं और संकल्पकी सिद्धि एवं वाणीकी सत्यता मुझे प्राप्त हो; गौ आदि पशुओं एवं विभिन्न अन्नों—भोग्य पदार्थोंके रूपमें तथा यशके रूपमें श्रीदेवी हमारे यहाँ आगमन करें॥ १०॥

लक्ष्मीके पुत्र कर्दमकी हम सन्तान हैं। कर्दमऋषि! आप हमारे यहाँ उत्पन्न हों तथा पद्मोंकी माला धारण करनेवाली माता लक्ष्मीदेवीको हमारे कुलमें स्थापित करें॥ ११॥

जल स्निग्ध पदार्थोंकी सृष्टि करे। लक्ष्मीपुत्र चिक्लीत! आप भी मेरे घरमें वास करें और माता लक्ष्मीदेवीका मेरे कुलमें निवास करायें॥ १२॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १३॥
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १४॥
तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥ १५॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥ १६॥

[ऋक्-परिशिष्ट]

हे अग्ने! आर्द्रस्वभावा, कमलहस्ता, पुष्टिरूपा, पीतवर्णा, पद्मोंकी माला धारण करनेवाली, चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिसे युक्त, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीका मेरे यहाँ आवाहन करें॥ १३॥

हे अग्ने! जो दुष्टोंका निग्रह करनेवाली होनेपर भी कोमल स्वभावकी हैं, जो मंगलदायिनी, अवलम्बन प्रदान करनेवाली यष्टिरूपा, सुन्दर वर्णवाली, सुवर्णमालाधारिणी, सूर्यस्वरूपा तथा हिरण्यमयी हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें॥ १४॥

हे अग्ने! कभी नष्ट न होनेवाली उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें, जिनके आगमनसे बहुत-सा धन, गौएँ, दासियाँ, अश्व और पुत्रादि हमें प्राप्त हों॥ १५॥

जिसे लक्ष्मीकी कामना हो, वह प्रतिदिन पवित्र और संयमशील होकर अग्निमें घीकी आहुतियाँ दे तथा इन पन्द्रह ऋचाओंवाले श्रीसूक्तका निरन्तर पाठ करे॥ १६॥

पुरुषसूक्त

*[वेदोंमें प्राप्त सूक्तोंमें 'पुरुषसूक्त' का अत्यन्त महनीय स्थान है। आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टिसे इस सूक्तका बड़ा महत्त्व है। इसीलिये यह सूक्त ऋग्वेद (मं० १०। ९०वाँ सूक्त), यजुर्वेद (३१वाँ अध्याय), अथर्ववेद (१९वें काण्डका छठा सूक्त), तैत्तिरीयसंहिता, शतपथब्राह्मण तथा तैत्तिरीय आरण्यक आदिमें किंचित् शब्दान्तरके साथ प्रायः यथावत् प्राप्त होता है। मुद्गलोपनिषद्में भी पुरुषसूक्त प्राप्त है, जिसमें दो मन्त्र अतिरिक्त हैं। पुरुषसूक्तमें सोलह मन्त्र हैं। वेदोक्त पूजा-अर्चामें पुरुषसूक्तके सोलह मन्त्रोंका भगवान्‌के षोडशोपचार-पूजन तथा यजनमें सर्वत्र प्रयोग होता है। इस सूक्तमें विराट् पुरुष परमात्माकी महिमा निरूपित है और सृष्टि-निरूपणकी प्रक्रिया बतायी गयी है। उस विराट् पुरुषको अनन्त सिर, नेत्र और चरणवाला बताया गया है—'**सहस्रशीर्षा पुरुषः।**' इस सूक्तमें बताया गया है कि यह सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड उनकी एकपाद्विभूति है अर्थात् चतुर्थांश है। उनकी शेष त्रिपाद्विभूतिमें शाश्वत दिव्यलोक (वैकुण्ठ, कैलास, साकेत आदि) हैं। इस सूक्तमें यज्ञपुरुष नारायणकी यज्ञद्वारा यजनकी प्रक्रिया भी बतायी गयी है। यहाँपर पुरुषसूक्त सानुवाद दिया जा रहा है—]*

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १॥
पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २॥

उन परम पुरुषके सहस्रों (अनन्त) मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। वे इस सम्पूर्ण विश्वकी समस्त भूमि (पूरे स्थान)-को सब ओरसे व्याप्त करके इससे दस अंगुल (अनन्त योजन) ऊपर स्थित हैं अर्थात् वे ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं॥ १॥

यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आगे होनेवाला है, वह सब वे परम पुरुष ही हैं। इसके अतिरिक्त वे देवताओंके तथा जो अन्नसे (भोजनद्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर (नियन्ता) हैं॥ २॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ ४॥
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ५॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ ६॥

यह भूत, भविष्य, वर्तमानसे सम्बद्ध समस्त जगत् इन परम पुरुषका वैभव है। वे अपने इस विभूति-विस्तारसे भी महान् हैं। उन परमेश्वरकी एकपाद्विभूति (चतुर्थांश)-में ही यह पंचभूतात्मक विश्व है। उनकी शेष त्रिपाद्विभूतिमें शाश्वत दिव्यलोक (वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक आदि) हैं॥ ३॥

वे परम पुरुष स्वरूपतः इस मायिक जगत्से परे त्रिपाद्विभूतिमें प्रकाशमान हैं (वहाँ मायाका प्रवेश न होनेसे उनका स्वरूप नित्य प्रकाशमान है)। इस विश्वके रूपमें उनका एक पाद ही प्रकट हुआ है अर्थात् एक पादसे वे ही विश्वरूप भी हैं, इसलिये वे ही सम्पूर्ण जड एवं चेतनमय—उभयात्मक जगत्को परिव्याप्त किये हुए हैं॥ ४॥

उन्हीं आदिपुरुषसे विराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ। वे परम पुरुष ही विराट्के अधिपुरुष—अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)-रूपसे उत्पन्न होकर अत्यन्त प्रकाशित हुए। पीछे उन्होंने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव, मानव, तिर्यक् आदि) उत्पन्न किये॥ ५॥

जिसमें सब कुछ हवन किया गया है, उस यज्ञपुरुषसे उन्होंने दही, घी आदि उत्पन्न किये और वायुमें, वनमें एवं ग्राममें रहनेयोग्य पशु उत्पन्न किये॥ ६॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाᳬंसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ७ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥ ८ ॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ ९ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥ १० ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬं शूद्रो अजायत॥ ११ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥ १२ ॥

उसी सर्वहुत यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद एवं सामवेदके मन्त्र उत्पन्न हुए, उसीसे यजुर्वेदके मन्त्र उत्पन्न हुए और उसीसे सभी छन्द भी उत्पन्न हुए॥ ७॥

उसीसे घोड़े उत्पन्न हुए तथा अन्य ऊपर-नीचे दाँतवाले प्राणी उत्पन्न हुए; उसीसे गायें उत्पन्न हुईं और उसीसे भेड़-बकरियाँ उत्पन्न हुईं॥ ८॥

देवताओं, साध्यों तथा ऋषियोंने सर्वप्रथम उत्पन्न हुए उस यज्ञ-पुरुषको कुशपर अभिषिक्त किया और उसीसे उसका यजन किया॥ ९॥

पुरुषका जब विभाजन हुआ तो उसमें कितनी विकल्पनाएँ की गयीं? उसका मुख क्या था? उसके बाहु क्या थे? उसके जंघे क्या थे? और उसके पैर क्या कहे जाते हैं?॥ १०॥

ब्राह्मण इसका मुख था (मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए)। क्षत्रिय दोनों भुजाएँ बने (दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए)। इस पुरुषकी जो दोनों जंघाएँ थीं, वे ही वैश्य हुईं अर्थात् उनसे वैश्य उत्पन्न हुए और पैरोंसे शूद्रवर्ण प्रकट हुआ॥ ११॥

इस परम पुरुषके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्य प्रकट हुए, कानोंसे वायु और प्राण तथा मुखसे अग्निकी उत्पत्ति हुई॥ १२॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ १३॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ १४॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥ १५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ १६॥

[शु०यजु० ३१। १—१६]

उन्हीं परम पुरुषकी नाभिसे अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुआ, मस्तकसे स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथिवी, कानोंसे दिशाएँ प्रकट हुईं। इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुषमें ही कल्पित (प्रकट) हुए॥ १३॥

जिस पुरुषरूप हविष्यसे देवोंने यज्ञका विस्तार किया, वसन्त उसका घी था, ग्रीष्म काष्ठ एवं शरद् हवि थी॥ १४॥

देवताओंने जब यज्ञ करते समय (संकल्पसे) पुरुषरूप पशुका बन्धन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि (मेखलाएँ) थे। इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी (गायत्री, अतिजगती और कृतिमेंसे प्रत्येकके सात-सात प्रकारसे) समिधाएँ बनीं॥ १५॥

देवताओंने (पूर्वोक्त रूपसे) यज्ञके द्वारा यज्ञस्वरूप परम पुरुषका यजन (आराधन) किया। इस यज्ञसे सर्वप्रथम धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मोंके आचरणसे वे देवता महान् महिमावाले होकर उस स्वर्गलोकका सेवन करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्यदेवता निवास करते हैं। [अतः हम सर्वव्यापी जड-चेतनात्मकरूप विराट् पुरुषकी स्तुति करते हैं।]॥ १६॥

सूर्यसूक्त

['सूर्यसूक्त' के ऋषि 'विभ्राड्' हैं, देवता 'सूर्य' और छन्द 'जगती' है। ये सूर्यमण्डलके प्रत्यक्ष देवता हैं, जिनका दर्शन सबको निरन्तर प्रतिदिन होता है। पंचदेवोंमें भी सूर्यनारायणकी पूर्णब्रह्मके रूपमें उपासना होती है। भगवान् सूर्यनारायणको प्रसन्न करनेके लिये प्रतिदिनके 'उपस्थान' एवं 'प्रार्थना' में 'सूर्यसूक्त' के पाठ करनेकी परम्परा है। शरीरके असाध्य रोगोंसे मुक्ति पानेमें 'सूर्यसूक्त' अपूर्व शक्ति रखता है। इस सूक्तको सानुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—]

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति॥ १॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २॥
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ अनु। त्वं वरुण पश्यसि॥ ३॥
दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे। तं प्रत्नथाऽयं वेनश्चित्रं देवानाम्॥ ४॥

वायुसे प्रेरित आत्माद्वारा जो महान् दीप्तिमान् सूर्य प्रजाकी रक्षा तथा पालन-पोषण करता है और अनेक प्रकारसे शोभा पाता है, वह अखण्ड आयु प्रदान करते हुए मधुर सोमरसका पान करे॥ १॥

विश्वकी दर्शन-क्रिया सम्पादित करनेके लिये अग्निज्वाला-स्वरूप उदीयमान सूर्यदेवको ब्रह्मज्योतियाँ ऊपर उठाये रखती हैं॥ २॥

हे पावकरूप एवं वरुणरूप सूर्य! तुम जिस दृष्टिसे ऊर्ध्वगमन करनेवालोंको देखते हो, उसी कृपादृष्टिसे सब जनोंको देखो॥ ३॥

हे दिव्य अश्विनीकुमारो! आप भी सूर्यकी-सी कान्तिवाले रथमें आयें और हविष्यसे यज्ञको परिपूर्ण करें। उसे ही जिसे ज्योतिष्मानोंमें चन्द्रदेवने प्राचीन विधिसे अद्भुत बनाया है॥ ४॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳस्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे॥ ५॥
अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपाꣳसङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति॥ ६॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ ७॥
आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा॥ ८॥
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे॥ ९॥

यज्ञादि श्रेष्ठ क्रियाओंमें अग्रणी रहनेवाले और विपरीत पापादिका नाश करनेवाले, श्रेष्ठ विस्तारवाले, श्रेष्ठ आसनपर स्थित, स्वर्गके ज्ञाता आपको हम पुरातन विधिसे, पूर्ण विधिसे, सामान्य विधिसे और इस प्रस्तुत विधिसे वरण करते हैं॥ ५॥

जलके निर्माणके समय यह ज्योतिर्मण्डलसे आवृत चन्द्रमा अन्तरिक्षीय जलको प्रेरित करता है। इस जल-समागमके समय ब्राह्मण सरल वाणीसे वेन (चन्द्रमा)-की स्तुति करते हैं॥ ६॥

क्या ही आश्चर्य है कि स्थावर-जंगम जगत्की आत्मा, किरणोंका पुंज, अग्नि, मित्र और वरुणका नेत्ररूप यह सूर्य भूलोक, द्युलोक तथा अन्तरिक्षको पूर्ण करता हुआ उदित होता है॥ ७॥

सुन्दर अन्नोंवाले हमारे प्रशंसनीय यज्ञमें सर्वहितैषी सूर्यदेव आगमन करें। हे अजर देवो! सब प्रकारसे आपलोग तृप्त हों और आगमनकालमें हमारे सम्पूर्ण गौ आदिको बुद्धिपूर्वक तृप्त करें॥ ८॥

हे इन्द्र! हे सूर्य! आप जहाँ-कहीं भी उदीयमान हों, वे सभी प्रदेश आपके अधीन हैं॥ ९॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्॥ १०॥
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततꣳ सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥ ११॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥ १२॥
बण्महाँ२ असि सूर्य बडादित्य महाँ२ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ असि॥ १३॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ२ असि सत्रा देव महाँ२ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥ १४॥

देखते-देखते विश्वका अतिक्रमण करनेवाले हे विश्वके प्रकाशक सूर्य! इस दीप्तिमान् विश्वको आप ही प्रकाशित करते हैं॥ १०॥

सूर्यका देवत्व तो यह है कि ये ईश्वर-सृष्ट जगत्के मध्य स्थित हो समस्त ग्रहोंको धारण करते हैं और आकाशसे ही जब हरितवर्णकी किरणोंसे संयुक्त हो जाते हैं तो रात्रि सबके लिये अन्धकारका आवरण फैला देती है॥ ११॥

द्युलोकके अंकमें यह सूर्य मित्र और वरुणका रूप धारणकर सबको देखते हैं। अनन्त शुक्ल—देदीप्यमान इनका एक दूसरा अद्वैतरूप है। कृष्णवर्णका एक दूसरा द्वैतरूप है, जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं॥ १२॥

हे सूर्यरूप परमात्मन्! आप सत्य ही महान् हैं। हे आदित्य! आप सत्य ही महान् हैं। महान् और सद्रूप होनेके कारण आपकी महिमा गायी जाती है। आप सत्य ही महान् हैं॥ १३॥

हे सूर्य! आप सत्य ही यशसे महान् हैं, यज्ञसे महान् हैं तथा महिमासे महान् हैं। आप देवोंके हितकारी एवं अग्रणी हैं और अदम्य व्यापक ज्योतिवाले हैं॥ १४॥

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम॥ १५॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ १६॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ १७॥

[शुक्लयजुर्वेद]

जिन सूर्यका आश्रय करनेवाली किरणें इन्द्रकी सम्पूर्ण वृष्टि—सम्पत्तिका भक्षण करती हैं और फिर उनको उत्पन्न करने अर्थात् वर्षण करनेके समय यथाभाग उत्पन्न करती हैं, उन सूर्यदेवको हम हृदयमें धारण करते हैं॥ १५॥

हे देवो! आज सूर्यका उदय हमारे पाप और दोषको दूर करे और मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी तथा स्वर्ग सभी मेरी इस वाणीका अनुमोदन करें॥ १६॥

सबके प्रेरक सूर्यदेव स्वर्णिम रथमें विराजमान होकर अन्धकारपूर्ण अन्तरिक्ष-पथमें विचरण करते हुए देवों और मानवोंको उनके कार्योंमें लगाते हुए लोकोंको देखते हुए चले आ रहे हैं॥ १७॥

वैदिक आरती

ॐ ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥

[शु०यजु० ७। १९]

ॐ आ रात्रि पार्थिव छं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदाछंसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥

[शु०यजु० ३४। ३२]

ॐ इद छं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीर छं सर्वगण छं स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥

[शु०यजु० १९। ४८]

हे देवताओ! तुम अपनी महिमाके प्रभावसे द्युलोकमें ग्यारह प्रकारके हो। महाभाग्यवान् होनेसे पृथ्वीके ऊपर भी ग्यारह प्रकारके हो और अन्तरिक्षमें भी ग्यारह प्रकारसे स्थित हो। आप सब लोग मिलकर इस यज्ञका आनन्द लें।

हे रात्रिदेवता! तुमसे अन्तरिक्षसम्बन्धी लोक और पितृसम्बन्धी स्थान सब ओरसे पूरित हैं। महान् महिमाशालिनी तुम स्वर्गलोकके स्थानोंको भी व्याप्त करती हो, तुम्हारा दीप्त अन्धकार चारों ओर वर्तमान है।

यह प्रजाको उत्पन्न करनेवाला हवि दस प्राण और दस इन्द्रियोंको उन्नति देनेवाला है। सब अंगोंको पुष्टि देनेवाला, आत्माको प्रसन्न करनेवाला, प्रजाको उन्नति देनेवाला, पशुधनकी वृद्धि करनेवाला, लोकमें प्रतिष्ठा देनेवाला, बल प्रदानकर अभय देनेवाला यह हवि मेरे लिये कल्याणकारक हो। अग्निदेवता मेरी प्रजाकी वृद्धि करें। हमारे लिये अन्न, दूध और तेजको धारण करें।